राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 73 जनवरी–दिसम्बर 2025

रामाश्रम सत्संग (रजि.), ग़ाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक	पृष्ठ
भजन	01
संतमत के अनुसार रहनी सहनी तथा लोक व्यवहार	02
परमार्थ का अर्थ : संत की पहचान	07
सच्चे जिज्ञासु बनें	14
सच्चाई को समझो	26
गुरू सतगुरू	27
प्रार्थना हृदय को शक्ति प्रदान करती है	36
अनमोल वचन	37
भक्त चतुर्भुजदास	40
कबीर के दोहे	46
संस्था की कार्यकारणी समिति 2025-2026	50
The Ideal of Human Conduct in the Geeta	52

राम संदेश

वर्ष 73 जनवरी-दिसम्बर 2025

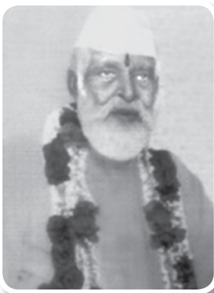

संस्थापक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना जी
सम्पादक : श्री उमा कान्त प्रसाद (आचार्य एवं अध्यक्ष)

भावांजलि

मालिक तेरी रजा रहे, और तू ही तू रहे !
मुझको तेरी तलब, व तेरी आरजू रहे !!

मुझको न दीन, और न दुनियाँ की आरजू !
तेरा ख्याल और तेरी जुस्तजू रहे !!

तौफीक अता कर मेरा सजदे में सर झुके !
तेरा ख्याल तेरा अमल तेरी बू रहे !!

कोई गिला किसी का, न दिल में रहे मेरे !
दुनियाँ भी छूट जाये फ़कत तू ही तू रहे !!

तेरे करम से प्यार तेरा, इस तरह मिले !
दुनियाँ को भूल जाऊँ, तेरी रंग बू रहे !!

बख्शीं हजार नेमतें बस एक और दे !
लबरेज तेरे प्यार से जामो सुबुं रहे !!

जब तलक जी में जान, रगों में लहू रहे !
अपने को भूल जाऊँ फ़कत तू ही तू रहे !!

ब्रह्मलीन परमसंत महात्मा रामचन्द्रजी महाराज................

सन्तमत के अनुसार रहनी-सहनी तथा लोक-व्यवहार

(ब्रह्मलीन परमसंत लाला जी महाराज)

मालूम भी हो तो मन की खेंचा खेंची से उस सुधार की कार्यवाही कठिनतापूर्वक होती है। अत: पूर्ण गुरु की आवश्यकता होती है कि वह इन बातों को समझकर सावधान करता है तथा उनका इलाज और उपाय बतलाता है। मन के सुधार के लिये योग्यता पैदा हो जाय और ऐसी शक्ति आ जाये जिससे मन वश में होने लगे इसके लिये वह कुछ अभ्यास, मनन और ध्यान की शिक्षा देता है। पूर्ण गुरु की शरण में आकर जिज्ञासु को मुख्यतया दो काम करने होते हैं। गुरु के सम्पर्क में आकर उसकी अनुमति और आज्ञा से अभ्यास सीखने से पूर्व पूर्ण विश्वास तथा दृढ़ मनोबल उत्पन्न करना पहला काम है। दूसरा काम यह है कि गुरु धारण कर लेने के पश्चात उनके आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करना, दृढ़प्रतिज्ञ रहना और अपनी दशा स्पष्ट रूप से सूचित करते रहना।

अब यह प्रश्न आता है कि क्या सन्तमत के अनुसार रहनी सहनी अपनाये बिना काम नहीं चल सकता? इसका उत्तर यह है जो उदाहरण देकर समझाया जाता है। मनुष्य के स्थूल शरीर के रोग तो वैद्य, हकीम, डाक्टर आदि के इलाज से दूर हो जाते हैं और सदाचार सम्बन्धी तथा आत्मिक रोगों का उपाय सन्तों के पास है। डाक्टर ने कोई औषधि दी जो पाँच रुपये की एक मात्र हो और आदेश दिया कि शीशी की डाट भली भाँति लगाये रखना जिससे औषधि का मूल तत्व उड़ने न पाये, औषधि पीने से पूर्व शीशी को अच्छी तरह हिला लेना, उसे ठण्डी जगह पर रखना, उसको गर्मी न पहुँचे, दिन में तीन मात्रायें भोजन से पूर्व लेनी हैं

और भोजन में साबूदाना, खिचड़ी, मूंग की दाल और दूध प्रयोग करना है। अब यदि रोगी शीशी की डाट खुली छोड़ दे, ठण्डक में रखने की बजाय उसे धूप में या चूल्हे के पास रख दे, पीने से पहले शीशी को हिलाये नहीं, एक बार में दो बार की दवा एक साथ पी जाये और तीसरी मात्र पीना भूल जाये, या जैसा कि बहुत से रोगियों की आदत होती है कि औषधि को जान–बूझकर फेंक देते हैं और जितना अधिक उन्हें समझाओ उतना ही उल्टा करते हैं, वैसा करे, भोजन में जो पथ्य बताया गया है उसकी अपेक्षा माँस, घुइयाँ, सोहन हलवा आदि जैसी वस्तुएँ प्रयोग करे तो उस औषधि का क्या परिणाम होगा इसका आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

दूसरा उदाहरण यह है कि आप एक अत्यन्त कोमल पौधा लगायें और उसमें खाद उसकी प्रकृति के प्रतिकूल डालें, पानी कभी न दें और न पशुओं से उसकी रक्षा करें तो उस पौधे का क्या हाल होगा।

तीसरा उदाहरण सुनिये। आप गुलाब का बहुत बढ़िया अर्क जो सबसे अधिक कीमत का हो, मंगवायें और शीशी को खुला हुआ अलमारी के नीचे के खाने में घुसा दें और ऊपर के खाने में मिट्टी के तेल का एक ऐसा पात्र रख दें जो टूटा हुआ हो और रिसता हो और जिसका तेल टपक–टपक कर शीशी में गिरे तो फिर उस गुलाब के अर्क का क्या हाल होगा? इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण हो सकते हैं।

इसी तरह आप चाहे कितना ही अभ्यास, मनन, जप आदि करें किन्तु यदि स्थूल शरीर से सम्बन्धित जितने आदेश हैं उन सबका पूर्णतया नियमानुसार पालन नहीं करेंगे तो लाभ न होगा।

सम्भव है कि आप यह चाहते हों कि अभ्यास तो करें सन्त–मत का और अपनी रहनी–सहनी रखें वर्तमान समाज के अनुरूप जो बहुत गिरी हुई दशा में है। इस प्रश्न का उत्तर आप स्वयं दे सकते हैं। हाँ, ऐसे व्यवहार, जैसे विवाह, रिश्तेदारी, रीति–रिवाज आदि, वर्तमान समाज के अनुरूप कर सकते है जिससे

सन्तमत के मूल सिद्धान्तों की नींव को ठेस न पहुँचे और धर्म का लोप न हो जाय। आजकल मामूली मोटी–मोटी बातें जो रीति–रिवाज में सम्मिलित हो गई हैं बुरी नहीं समझी जाती हैं, किन्तु उनसे वास्तव में धर्म की नींव को ठेस पहुँचती है। उनका अवश्य ध्यान रखें। उदाहरणतया नशीली वस्तुएं खुल्लमखुल्ला या छिपे तौर से प्रयोग करना, जुआ खेलना, बाजारी स्त्रियों से सम्बन्ध रखना, इत्यादि। यह बातें ऐसी नहीं हैं जो बहुत बारीक हों और समझ में न आ सकें। पहले इन बातों से अपने आपको बचाना चाहिये, उसके पश्चात बारीक बातें भी ज्ञात हो जायेंगी।

यहाँ कुछ नियम सन्तमत (विशेषकर रामाश्रम सत्संग) के अनुयायियों के कल्याणार्थ दिये जाते हैं, जिनका विश्वास परिपक्व नहीं है, ढिलमिल है, उनके लिये नहीं हैं:-

(1) परमात्मा में पूर्ण विश्वास होना चाहिये। जिस प्रकार किसी मनुष्य को किसी वस्तु की तलाश है और हर जगह माँगने पर भी कोई उसको वह वस्तु नहीं देता तो वह बिल्कुल निराश होकर बैठ जाता है। इसी तरह प्रत्येक भाई–बन्धु, कुटुम्ब, मित्र, अधिकारी–अधिकृत, राजा–रंक सबसे निराश होकर रहे। यदि कोई उसकी सहायता करे तो उसे परमात्मा की ओर से समझे और यह विचार करे कि जिसके द्वारा सहायता मिली है, परमात्मा ने उसके दिल में यह प्रेरणा भर दी है जो वह इस प्रकार सहायता कर रहा है। उसको परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिये और फिर उस व्यक्ति का अपने भीतर और बाहर से कृतज्ञ होना चाहिये क्योंकि उसने ऐसे आदेश को जो परमेश्वर ने दिया, स्वीकार किया और उसका पालन किया।

(2) अपने से प्रत्येक बड़े का आदर और सम्मान करता रहे। अपने से छोटों को प्रेम करे, उनकी आवश्यकताओं को भरसक पूरा करने का प्रयास करे तथा उनके दोषों को क्षमा करता रहे। अपने बराबर वालों के साथ स्नेह, सहानुभूति और उचित सहायता करे। जो मनुष्य बिना बात विरोध करने पर तुले हुए हैं उनसे

अपना बचाव, उनके प्रति उदासीनता और उनसे अपने–आपको अलग रखना चाहिये, जिस प्रकार ऋणी अपने साहूकार से घबराता है या कंजूस अपना धन व्यय करने से बचना चाहता है। किन्तु यदि वे भी सहायता के इच्छुक हों तो उनका काम कर देना चाहिये और फिर अलग हो जाना चाहिये। उनसे घृणा करने या उनको क्षति पहुँचाने अथवा बदला लेने की भावना नहीं रखनी चाहिये।

(3) प्रत्येक मनुष्य के दोषों को छिपाते रहना चाहिये और यदि किसी का कोई भेद मालूम है तो बिना उसकी अनुमति के किसी पर प्रकट नहीं करना चाहिये। अपनी गलती को तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिये और हठ नहीं करना चाहिये। तर्क और आलोचना से बचते रहना चाहिए। अपने दोषों पर दृष्टि रखनी चाहिये। यदि दूसरों में दोष दिखाई देते हैं तो उससे स्वयं सीख लेनी चाहिये।

(4) किसी के दोष को मुँह पर नहीं लाना चाहिये। सम्भव है वह दोष तुममें भी हो जाये। बिना जाँच–पड़ताल किये किसी को दोषी नहीं ठहराना चाहिये। यदि अपना कोई कुटुम्बी या पुत्र भी चरित्रहीन हो तो उसका बेजा साथ नहीं देना चाहिये क्योंकि उसे उस दुष्कर्म को बार–बार करने का बढ़ावा मिलता है। यदि समझाने से न माने तो उसे छोड़ कर अलग हो जाना चाहिये।

(5) अपमान और बुराई बुरे चरित्र और बुरे व्यवहार से होती है। झूठा वायदा करने से अपमान होता है।

(6) ऋण लेना सबसे बुरा है। यदि अत्यन्त आवश्यक है तो कोई हर्ज नहीं है। आवश्यकता का अवसर सोचने और समझने से उत्पन्न हो सकता है। जो ऋण किसी दिखावे के कारण लिया जाता है उसका चुकाना कठिन हो जाता है। यदि किसी दुख–मुसीबत या भोजन आदि की आवश्यकता को पूरा करने या कन्या के विवाह करने या अकालग्रस्त होने के कारण लिया जाता है और यदि लेने वाले की नीयत ठीक है तो परमात्मा उसकी सहायता करता है और वह कभी–न–कभी चुकता हो जाता है। अपने साहूकार के सामने जाते रहना चाहिये, मुँह छिपाना मना है। नौकर से वह काम लेना चाहिये जिसको करने से

स्वयं तुम मजबूर हो। वह नौकर तुम्हारी सहायता करने के लिये है न कि तुम्हारी विलासप्रियता की पूर्ति के लिये। मजदूर की मजदूरी तुरन्त दे देनी चाहिये। टालमटोल करना दुराचार है।

(7) अपनी सन्तान को धार्मिक शिक्षा अवश्य देनी चाहिये। अपनी पत्नी को किसी–न–किसी प्रकार अपने समान विचारों का बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(8) जहाँ मदिरापान हो रहा हो, नशीली वस्तुओं के प्रयोग के साथ–साथ नाच–गाना हो रहा हो, वहाँ सम्मिलित होने से अपने आपको भरसक बचायें और यदि मजबूरी में सम्मिलित होना पड़े तो इस तरह सम्मिलित हों जिस तरह शौच के लिये मजबूरी जाना पड़ता है।

(9) संगीत में मन न लगायें और उसमें आनन्द न लें। यदि मजबूरी कहीं सुनना पड़े तो उससे ऐसा परहेज भी न करें कि और लोग ताड़ जायें और यह समझें कि दूर भागते हैं।

(10) यदि परिवार वाले अथवा सम्बन्धी ऐसे कार्य करने को विवश करें, जिनके करने से धर्म नष्ट हुआ जाता हो, तो यदि आवश्यक हो तो सम्बन्ध तोड़ दे क्योंकि नाते–रिश्तेदार, मित्र व स्नेही आपत्ति–काल में तो सहायक होते नहीं और यदि धनवान भी हों तो एक कौड़ी ऋण नहीं देते बल्कि आलोचना करते हैं और ताने देने को हर समय तैयार रहते हैं। फिर उनसे कोई आशा बाँधकर अपना सत्यानाश क्यों किया जाय।

सारांश यह है कि सन्तमत के सिद्धान्तों पर दृढ़ रहें और किसी से झगड़ा न करें। दूसरों के प्रति सहानुभूति, करते हुए ईश्वर की इच्छा के अनुकूल रहना चाहिये। सदा भगवान के आश्रित रहना चाहिये और उसकी बनाई हुई प्रकृति के नियमों के अनुकूल कर्म करना चाहिये।

(सन्तमत प्रवेशिका से उद्धृत)

ब्रह्मलीन गुरुदेव परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज ......

परमार्थ का अर्थ : संत की पहिचान

(प्रवचन गुरुदेव, गोरखपुर)

अपनी कामनाओं का पूरा हो जाना ही परमार्थ का शाब्दिक अर्थ है पर संतों का परमार्थ कुछ और है। स्वार्थ और परमार्थ दो वस्तुएं हैं। परमात्मा का प्रेम चाहने वाले बहुत कम हैं, हजारों में से कोई एक। प्रेम तो प्रेम के लिए होना चाहिए, और प्रेम का असली भण्डार परमात्मा है। उसे चाहने वाला कोई विरला ही होता है, वही परमार्थी के श्रेणी में आता है। शेष सभी स्वार्थवश प्रेम करते हैं।

फायदा या नुकसान (लाभ या हानि) दोनों साथ-साथ हैं। आजकल के जैसे जिज्ञासु हैं वैसे ही संत भी हैं। जिस इच्छा शक्ति (विल पावर) से परमात्मा की नजदीकी (सामीप्य) हासिल करनी चाहिए उसे वे अपनी ख्वाहिशों को पूरा करने में लगा देते हैं और इतना नीचे उतर आये हैं जितना जानवर भी नहीं उतरते। आजकल जहाँ जिज्ञासु बहुत हैं वहाँ उसी तरह के संत भी बहुत हैं। असली जिज्ञासु वह है जो परमात्मा के प्रेम के लिए प्रेम करे और सच्चा संत वह है जो उसे परमात्मा का प्रेम दे सके।

एक बार गुरु नानक साहब एक घसियारे की घर रुके। वहां के नवाब साहब भी आये और कहने लगे कि हम भी आपके शिष्य हैं, हमारे यहाँ भोजन स्वीकार कीजिये। इस घसियारे कि सूखी रोटियां आपको क्यों प्यारी लगती हैं? इस पर गुरुदेव ने दोनों के घर का भोजन मंगवाया। एक हाथ में उन्होंने नवाब के घर का पूरी हलवा लिया और दुसरे हाथ में उस घसियारे के घर कि रूखी सूखी रोटी और नमक। दोनों को निचोड़ा तो हलवा पूरी में से खून की बूँदे टपकी और रूखी रोटी में से दूध। गुरुदेव ने उन धनी मनी सज्जन से कहा- ''कौन

सा खाऊँ? जिस में से खून टपक रहे हैं वह, या जिस में से दूध निकल रहा है वह?''

जो जिज्ञासु धन दौलत वाला है परमात्मा से धन ही चाहेगा, परन्तु जो गरीब है दुखी है, वह परमात्मा का प्रेम चाहेगा। इसलिए आजकल देखने में आता है कि इज्जत, प्रतिष्ठा, मान, बड़ाई के लिए सब फकीरी करते हैं। संतों का कहना है कि जिसने दुनिया को भोगा है, उसकी दु:ख मुसीबतों को जानता है, वह यहाँ फंसाने वाली चीजें नहीं चाहेगा। वह उन्हें यहाँ भोग चुका है।

गुरु की जहाँ और पहिचाने है वहां यह भी एक पहिचान है कि वह सच्चे जिज्ञासु की तलाश में रहता है और इस प्रकार अपने गुरु का ऋण उतारना चाहता है। उसको दुनियां की चाह नहीं होती। जो कुछ न चाहता हो, जिसके पास बैठने से ईश्वर प्रेम बढ़े, दुनियां की वासनाएं कम हो, आंतरिक अभ्यास करता हो, जो अपनी गाढ़ी कमाई की चीज (ईश्वर प्रेम) बिना स्वार्थ दे दे, जो सिद्धियों को दिखाकर लोगों को लुभाता न हो और जो एक दिन में ही परमात्मा के दर्शन कराने का ठेका न ले, वही सच्चा संत है।

कर्मयोग के सिद्धांत जो करेंगे सो भोगेंगे में संत दखल नहीं देता। वह दयावश अपने प्यारे शिष्य के कर्मफल अपने उपर भोग लेता है। ऐसे संत पूरी दुनियां में एक शताब्दी में मुश्किल से दस या बारह होते हैं। जो ताविजें गंडे से दूर हों, दुर्व्यसनों (बुरी आदतों) का शिकार न हों, खुद अभ्यास किया हुआ हो, जिसे दुनियां की चीजों से उपरति हो गयी हो, ऐसे मनुष्य (जो अंतर का अभ्यास करते हों) ही संत हैं। वे बाहर की तरफ ले जाने वाले पूजा पाठ से हटकर अंतर का अभ्यास बताते हैं। संत उन लोगों को, जो तम कि अवस्था में हैं, हरकत (Motion) देते हैं, जिनमें हरकत है उन्हें परमात्मा का प्रेम देते हैं। बुरे लोग उनकी संगति में आकर भले बनते हैं। संत दुनियां से तारने के ठेकेदार नहीं हैं। वे चाहते हैं कि सच्चे जिज्ञासु को रास्ता बता दें जिससे वे धोखे में न पड़े।

संतमत का तरीका यह है कि बाप कि नकल बेटा है। परमात्मा ने आदमी को अपने ढंग पर बनाया है। जो शक्तियाँ ब्रह्मांड में काम कर रही हैं वही छोटे रूप में मनुष्य चोले में काम कर रही हैं। आत्मा दोनों भौहों के बीच में एक इंच नीचे है। मामूली अवस्था में आत्मा की धार आज्ञा चक्र पर बैठकर देखभाल करती रहती है। जैसे किसी को जुकाम हो जाए और सांस रुकती हो और ठीक से न आती हो तो उपर से सर की तरफ से दबाव पड़कर नाक द्वारा छींक आती है और सांस ठीक हो जाती है, यानि शरीर में ज्यादा शक्ति संचारित होकर उस रुकती हुई सांस को ठीक करती है।

ऐसे ही जब कोई भारी बोझ हाथ से उठाना पड़ता है तो उपर से शक्ति पुठ्ठों (मसल्स) में आ जाती है और उस शक्ति से आप बोझ उठा लेते हैं। इसी तरह नारायणी शक्ति ब्रह्मांड में है जो संसार का नियन्त्रण रखती है। जब खराबियां संसार में आ जाती है तब उपर से और बड़ी शक्तियां आती हैं और जीवों को समझा बुझा कर सन्मार्ग पर लाती है पर जब वे नहीं मानते तो शस्त्र उठा लेती हैं और काट छांट कर के संतुलन कर देती है। इन्हीं शक्तियों को अवतार या पैगम्बर कहते हैं। काम पूरा हो जाने पर संतुलन कायम रखने के लिए यह अपने पीछे किसी को नियुक्त कर जाते है, वही गुरु कहलाते हैं।

इस तरह अब तीन रूप हो गये –

(1) परमात्मा, (2) अवतार या पैगम्बर, (3) गुरु।

यह सवाल हो सकता है कि अगर सब जीवों को सीधा परमात्मा से ही मार्गदर्शन हो सकता होता और सीधा लाभ हो सकता तो फिर अवतार या पैगम्बर को यहाँ भेजने का क्या मतलब है? इसका जवाब यह है कि हम परमात्मा से मार्गदर्शन का लाभ तब उठा सकते है जब वह नीचे आ जाये अर्थात् मनुष्य रूप में आ जाए। उसे जीवों का कल्याण करना मंजूर है इसलिए अपने आपको अपने कानून में बाँधता है और स्वयं उनको मानता व उनका पालन करता है। बच्चे को माँ के पेट में हवा, पानी खाना आदि वही तो देता है। क्या वह सीधा

उसे नहीं दे सकता था? लेकिन नहीं, उसी कानून के कारण उसने उसका पालन पोषण माँ के द्वारा किया।

एक ऊंट है, दोनों तरफ पानी है, बीच में एक पतला रास्ता है, पहले ऊंट की नकेल मालिक के हाथ में है। शेष सभी ऊँटों की नकेल आगे वाले ऊंट की पूंछ में बंधी होती है और एक के पीछे एक सब ऊंट उसी संकरे रस्ते से निकल जाते है। पर जब वह इधर उधर पत्तियों के खाने में लग जाता है तो इधर या उधर गिर जाता है। इसी तरह परमात्मा सबका मालिक है। जो पुरुष उस तक पहुँच चुका है उसका सहारा लेकर दूसरे भी भवसागर पार कर जाते हैं। ऐसा ही पुरुष गुरु हैं। यह नियम है। परमात्मा तो सबका मालिक है ही, किन्तु जीव को फायदा देहधारी गुरु से ही होता है। उसी के सहारे अवतार या पैगम्बर तक पहुंचेगा और फिर परमात्मा तक।

गुरु तीन प्रकार के होते हैं।

(1) पहला गुरु नर तन धारी है। वह अपनी सूरत को बाहरी जगत से हटाकर शब्द और प्रकाश में लगा देते हैं। उनका ध्यान करने से जीव बाहरी दुनियां और माया के बंधन को ढीला करता है। वह गुरु शब्द और प्रकाश तक पहुंचा देते हैं और यह हालत छठे चक्र तक है। जब तक आपको प्रकाश या शब्द नहीं मिला है तब तक आपको नर तन धारी गुरु से ही लाभ होगा और बिना उसके अंतर का गुरु, जो शब्द और प्रकाश है, नहीं मिल सकता। जब तक यह नहीं मिलता तब तक परमात्मा का असली दर्शन नहीं हो सकता।

(2) दूसरा गुरु अंतर का है जो अपने अंदर है। यह आज्ञा चक्र से सतलोक तक है।

(3) तीसरा गुरु परमात्मा है जो प्रेम ही प्रेम है।

शब्द भी दो तरह के होते हैं। एक Arterial (जो कि रगों से पैदा होता है) और दूसरा Spiritual (आत्मिक)। एक माद्दी (स्थूल) है, दूसरा आत्मा की धार

के उतरने का है और सूक्ष्म है। स्थूल आवाज दिल के दरवाजों (Valves)के खुलने और बंद होने से होती है। Arterial (माद्दी-स्थूल) आवाज का रुझान (बहाव, झुकाव) बाहर की तरफ को है। यह नाड़ी की आवाज के साथ-साथ चलती है। इसको नहीं सुनना चाहिए। इसके सुनने से सिर दर्द करने लगता है। यह ध्वन्यात्मक शब्द नहीं है। Spiritual vibration (ध्वन्यात्मक शब्द) आत्मा की धार से सम्बन्धित है। आत्मा उपर से उतर कर पिंड यानि इस मनुष्य शरीर में जिस जिस जगह (Nervous Centre, चक्र) पर ठहरी वहीं एक तरह की आवाज पैदा करती गयी है। इसी को आत्मा की धार की आवाज, ध्वन्यात्मक शब्द, अनहद शब्द, आदि नामों से पुकारते हैं। यह अंतर का शब्द है। इससे चित्त एकाग्र (Concentrate) होता है और शक्ति मिलती है। माद्दी (स्थूल) आवाज भी इसी के पास ही रहती है।

आत्मा की धार का शब्द अलग-अलग चक्रों पर हो रहा है उसके सुनने से ही असली फायदा होता है। यह शब्द जल्दी नहीं सुनाई देता है। यदि यह पहले पहल सुनाई न पड़े तो पहले Arterial Sound (स्थूल शब्द) को ही सुनो। ध्यान (Concentration)करते-करते मन एकाग्र होने लगता है। और उस हालत में साधकों को सिद्धियाँ आने लगती है। उनके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। इसके साथ ख्याल रखो कि दूसरा शब्द जो ध्वन्यात्मक है उसी के पास हो रहा है और वह सुनाई देने लगेगा।

इस प्रकार तीन फनाइयतें (लय अवस्थाएं) होती हैं।

(1) गुरु में लय, (2) अवतारों में लय, (3) परमात्मा में लय और फिर उससे भी निकल जाना। सूफियों में इसे क्रमशः कहते हैं:- (1) फनाफिल शेख, (2) फनाफिल रसूल, (3) फनाफिल अल्लाह। पहले गुरु से प्रेम करो और जो कुछ उसके प्रेम में बाधा डाले उसे काटते चलो। सारी दुनियां से प्रेम करते हुए भी बीच में उनके (गुरु के) प्रेम को रखे रहो इससे जीव दुनियां में नहीं फंसने पायेगा। जब गुरु से प्रेम बढ़ जाएगा और लगातार रहने लगेगा तो जो ख्याल

उनका होगा, वही तुम्हारा होगा। बहुत से लोग नकल करते हैं पर यह ठीक नहीं है। सच तो यह है कि दिल उन्हें चाहने लगे। गुरु का सम्बन्ध आत्मिक है। उसे जात पात से कोई मतलब नहीं। यह पहली फनाइयत (लय अवस्था) है।

दूसरी लय की अवस्था (फनाइयत) शब्द में लय होने की है। सोते, उठते, बैठते वही सुनाई दे, इतना ध्यान उसमे लग जाए। जितने भी उसके कार्य होंगे, उसके अधिकार में होंगे। अवतार जीव और परमात्मा के बीच कि कड़ी होती है और शब्द भी आत्मा और परमात्मा को मिलाने वाली कड़ी होती है।

तीसरी लय की अवस्था परमात्मा में लय होने की है। इसमें प्रेम ही प्रेम है। हर समय उसी के प्रेम में मस्त हो कर आंसू निकल रहे हैं, यह अवस्था हो जाती है। इसकी पहचान यह है कि किसी के प्रति घृणा नहीं रहती। सबसे प्रेम और मैत्री का व्यवहार होता है। सबकी सेवा होने लगती है। जिधर देखता है सब अपने ही दिखाई देते हैं। जो प्रेम अपने पुत्र से है वही सारी दुनियां से है। यहाँ वह दो से एक हो जाता है, द्वैत भाव जाता रहता है–'तू ही तू' हो जाता है।

अगर गुरु कि शक्ल नहीं आती केवल ख्याल रहता है और ध्यान लगा रहता है, शब्द सुनाई नहीं देता और प्रकाश भी नहीं दिखाई पड़ता, पर मन लगा रहता है तो यह ऊँची हालत है।

वे लोग धोखे में है जो 'दुनियां झूठी है' 'जगत मिथ्या है' चिल्लाते हैं। मेरा अनुभव यह है कि शक्ति ही प्रकृति भी है और इससे प्रेम करने से मदद मिलती है और नफरत करने पर यह तोड़ फोड़ कर चिथड़े–चिथड़े कर देती है। माया का निरादर न करो। वह हम सबकी माँ है। माँ का सहारा लेकर बाप से नजदीकी (सामीप्य) प्राप्त करो। माँ काली ने सदा श्री रामकृष्ण परमहंस की मदद की और आखिर में हाथ में कटार देकर आगे बढाने के लिए अपना सिर काट देने के लिए कहा। इसी प्रकार प्रकृति माता से सच्चा प्यार होने पर वह आगे बढाती है। जहाँ वस्तु है, वहां असली छाया भी है। जहाँ निराकार है, वहां साकार भी

है। इसलिए इसके विवाद में मत पड़ो। जहाँ असल है, वहां नकल भी है। नकल का सहारा लेकर असल तक पहुँच जाओ। इसी में कल्याण है।

हर बात पर मनन करो। उसे पुराने आचार्यों और संतों की किताबों से मिलाओ। यदि नहीं मिलती तो समझ लो कि अभी तुम्हारे अनुभव में गलती है क्योंकि सद्ग्रंथ गलत नहीं है। फिर विचार करो और उसे समझो। अपने अंतर में घुसो। जब अंदर सच्चे रूप से घुस जाओगे तब सभी रहस्य खुल जायेंगे।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

(संत वचन - भाग 2 से उद्धृत)

*जंगल-जंगल ढूँढ रहा है मृग अपनी कस्तूरी...।
कितना मुश्किल है तय करना, खुद से खुद की दूरी.....।*

*भीतर शून्य, बाहर शून्य.....।
शून्य चारो ओर है,
मैं नहीं हूँ मुझमें
फिर भी "मैं, मैं" का ही शोर है।।*

क्या छोड़ना है, इसपर ध्यान देने के बजाय क्या पकड़ना है इस पर ध्यान दिया जाये तो हम बेहतर ध्यान कर पाएंगे।

*जगत में एक ही पाप है:
इस बात का बोध कि मैं कुछ हूँ।
और एक ही पुण्य है:
इस बात का अनुभव कि मैं कुछ भी नही हूँ।*

ब्रह्मलीन प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

सच्चे जिज्ञासु बनें

(गोपालगंज, दिनांक 15.03.1973, सायं)

महाराष्ट्र में संत तुकाराम जी बहुत मशहूर संत हुए हैं, उनका कीर्तन हो रहा था। वहाँ छत्रपति शिवाजी पहुंचे। कीर्तन के कुछ भजन वैराग्य के थे। शिवाजी को कीर्तन ने बहुत प्रभावित किया। छत्रपति ने तुकाराम जी से कहा कि 'आप मुझे अपनी शरण में ले लें, मैं भी घरबार छोड़ कर सन्यासी बनना चाहता हूँ' परन्तु तुकाराम जी ने अपनी शरण में नहीं लिया। उनके भाव को सराहा कि आप समर्थ गुरु रामदास जी की सेवा में जाए। उनका जो आपके प्रति आदेश हो उसका पालन करें।

गुरु और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है–यह सत्य है। परन्तु कैसा गुरु? सब व्यक्ति जो अपने को गुरु कहते हैं, वो वास्तव में गुरु नहीं है। गुरु कहलाने का उसी को अधिकार है जिसमें परमात्मा के सारे गुण हैं। तभी तो परमात्मा में और उसमें कोई अंतर नहीं है। भले ही हम वेदांत का उद्यम लेकर के कह दें कि मुझमें और परमात्मा में आत्मा के कारण कोई अंतर नहीं है परन्तु ऐसे व्यक्ति के भीतर वो गुण नहीं है जो परमात्मा में है। ऐसे गुरु का मिलना सौभाग्य की बात है, परंतु गुरु भी योग्य शिष्य को अपनाता है। कितने ही लोग आते हैं सेवा में, परंतु सब सेवक नहीं कहलाते। जिज्ञासु सब हैं, इच्छा है ईश्वर प्राप्ति की, परंतु सेवक बनना बड़ा कठिन है। सब कुछ गुरु के चरणों में निछावर करना पड़ता है। शरीर, मन, धन, अपना अहंकार, अपना मोह, कुछ नहीं रखना है, सब कुछ गुरु के चरणों में अर्पण करना है। बड़ा कठिन है।

शिवाजी जब समर्थ गुरु रामदास की सेवा में पहुंचे तो उन्होंने छत्रपति

शिवाजी की परीक्षा ली है। छत्रपति संस्कारी जीव थे उनके साथ समर्थ बड़ा प्रेम करते थे परन्तु बिना परीक्षा लिए उन को पूर्णतः अपनाया नहीं है। एक बार आपने कहा कि मेरे पेट में बड़ी कठोर पीड़ा हो रही है शिवाजी, बड़ी पीड़ा है, मैं तो मर रहा हूँ। शिवाजी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की है–'प्रभु! मुझे बताइए कि कौन सी औषधि लाऊं जिससे आपको राहत मिले आपको सुख मिले' तो समर्थ कहने लगे कि उस शेरनी का दूध लाओ, जिसने अभी बच्चे दिए हों। उस दूध से मेरी यह जलन, पीड़ा दूर हो सकती है। छत्रपति एक सोने का बर्तन लेकर निकले हैं क्योंकि अन्य धातुओं के बर्तन में शेरनी का दूध खराब हो जाता है। शेरनी का दूध लेना कोई साधारण बात नहीं है। शेर या शेरनी को देखकर तो वैसे ही व्यक्ति के प्राण निकल जाते हैं और जिस स्थिति में गुरु ने कहा कि शेरनी हो, उसमें तो शेरनी किसी को अपने पास आने ही नहीं देती क्योंकि वह सोचती है कोई उसके बच्चों को हानि पहुंचाने तो नहीं आया है। जब वे जंगल में निकले हैं तो देखा है कि एक गुफा में शेरनी ने बच्चे दिए हैं और उसकी आंखों में जलन है, तेजी है। शिवाजी को गुरु में निष्ठा थी। खड़े हो गए हैं। कहा है–'माँ' यह भाव है। यदि शुद्ध भाव है तो शेर जैसा भयानक पशु भी सरल हो जाता है। हमारे मन में भय रहता है कि अमुक व्यक्ति मुझे दु:ख दे देगा। तो ऐसा हो ही जाता है और वह दु:ख दे ही देता है। हम डरते हैं शेर से या अन्य पशुओं से जिसका परिणाम यह होता है कि वे हम पर आक्रमण करते हैं। जिसके भीतर में सरलता है द्वैत नहीं है, प्रेम है, विश्व प्रेम हैं, सबमें परमात्मा के दर्शन करता है, सब में गुरु के दर्शन करता है, उनको ऐसे भयानक पशु भी कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते, यह निर्भयता जिज्ञासु में आनी चाहिए।

तो वे खड़े हो गए हैं और कहते हैं–'माँ। मेरे गुरुदेव के पेट में बड़ी पीड़ा हो रही है मुझे थोड़ा दूध दे दें'। आपने आगे बढ़कर दूध लिया है। शेरनी की अवस्था ऐसी थी, जैसे कोई पराजित व्यक्ति हो या जिसमें अपनत्व हो। प्रेम की जो दशा होती है, माँ की बच्चे के प्रति, जो मातृ भावना होती है वह शेरनी की उस समय थी। आपने दूध लेकर धन्यवाद किया है, मुड़ कर प्रेम से देखा है

और विदाई ली है। दूध का पात्र लेकर गुरु के पास आए हैं। गुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए हैं, आशीर्वाद दिया है–'शिवा तू शेरों का शेर बनेगा। यह तो एक परीक्षा थी'। उनको दूध की क्या आवश्यकता थी।

दूसरी बार फिर परीक्षा ली है। एक भिखारी बनकर आए हैं। छत्रपति अपने महल से निकल कर आए हैं। देखा है कि गुरुदेव द्वार पर खड़े हैं, भिक्षा मांग रहे हैं। गुरुदेव से कहते हैं कि आप! और भिक्षा मांगते हैं? कहते हैं–'हाँ, आज तुझसे भिक्षा लेनी है। तू इस भिक्षा पात्र में क्या डालेगा? डाल इसमें क्या डालता है'। भीतर जाकर शिवाजी ने एक कागज के टुकड़े पर लिखा है–'मेरा शरीर, मेरा मन, मेरा राज्य, और जो कुछ भी मेरा है सब आपके चरणों में अर्पण हैं'। तलवार एक तरफ रख दी है राजमुकुट उतार कर एक तरफ रख दिया है और करबद्ध हो समर्थ के सामने नतमस्तक हो गए हैं और निवेदन किया है कि यह सब आपका है। ये है जो कबीर साहब कहते हैं कि 'मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मेरा' कितनी मोह विमुक्त स्थिति है! क्या हम ऐसा कर सकते हैं? गुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए हैं और शक्तिपात किया है, माँ से प्रार्थना की है, और शिवाजी को शक्ति स्वरूप बना दिया है। ये कोई साधारण बात नहीं थी कि उस समय औरंगजेब का कोई मुकाबला कर सके।

तो ऐसे गुरु होने चाहिए और शिष्य भी शिवाजी की तरह हो। बार–बार गुरु का स्मरण करना या बार–बार उनका ध्यान करना इतना ही काफी है और कुछ करने की जरूरत नहीं है। परन्तु गुरु सच्चा हो और उसकी सेवा के लिए संतों की वाणी में बार–बार आदेश दिया है। उसके चरण क्या है? सच्चा गुरु अपने चरणों की सेवा कराने के लिए, पूजा कराने के लिए कभी तैयार नहीं होता, तो फिर क्यों कहा गया कि गुरु चरणों की पूजा करो। जो व्यक्ति गुरु के शारीरिक चरणों का ध्यान करता है उसके भीतर में दीनता आती है। हम लोग शरीर का ध्यान करते हैं। जो चरणों का ध्यान करता है वो अति दीन होगा। चरणों की सेवा का दूसरा मतलब यह है कि जो उसका उपदेश है, आदेश है उसका पालन

करना, चूं चरा नहीं करना। हमें अभिमान आता है जाता है, बड़े बड़े साधक हैं उन्हें भी अभिमान आ जाता है।

एक बार गुरु गोविन्द सिंह जी के पास एक युवक आया दो तीन साल रहा, घर से पत्र आया कि काफी दिन हो गए तुम्हें गए हुए, तुम आ जाओ तुम्हारी शादी निश्चय की है। यह गुरु महाराज को भी पत्र लिखा। उन्होंने कहा कि जाओ बच्चे तुम्हें जाना चाहिए काफी दिन हो गए हैं घर से निकले, परंतु एक बात का ध्यान रखना कि हम जिस समय पत्र भेजें उसी समय उलटे पांव आ जाना। उसने कहा 'ठीक है, गुरुदेव जैसी आपकी आज्ञा'। घर पहुंचा तो देखता है कि विवाह का सब प्रबंध हो चुका है। फेरों पर बैठे। दो फेरे हुए थे तो पत्र आ गया गुरु जी का कि तुरंत आ जाए। देखिये कितनी नाजुक स्थिति है। उसी वक्त फेरों का मंडप छोड़कर वापिस गुरुदेव की तरफ चल पड़ा है। परंतु अहंकार ने छोड़ा नहीं। मन में विचार उठा कि मैं कितना बड़ा साधक हूँ कितना अच्छा साधक हूँ कि विवाह के फेरे हो रहे थे और फेरों को छोड़ कर तुरंत गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए उठ खड़ा हुआ। ये माया कैसे फंसाती है। परन्तु गुरु पूर्ण था, जहां परीक्षा ली वहां बचाया भी है। रास्ते में उस युवक ने एक वेश्या का घर देखा। उसकी सीढियों पर जाने लगा। गुरु रक्षा करता है। तो क्या देखते हैं सीढ़ियों पर गुरु महाराज खड़े हैं। कहा– तुम यहाँ? वह युवक पाँव पड़ गया। उसके भीतर में जो अहंकार आया था जिसके कारण बुरी तरफ मन गया, वह क्षीण हो गया। पाप कर लिए, रोने लगा। गुरु ने आलिंगन किया।

गुरु–शिष्य का सम्बन्ध बड़ा नाजुक है। परन्तु यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाये तो उसमें और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है। उसकी प्रसादी उसकी प्रसन्नता तथा उसका एक शब्द कि 'तुम मुक्त हो गए' इतना ही काफी है साधक को कुछ करने की जरूरत नहीं है गुरु की वाणी में इतनी शक्ति होती है। तभी तो गुरु शब्द की बड़ी महत्ता कही गई है। उसकी वाणी में सारे विश्व की शक्ति हैं परन्तु गुरु तो कोई हो।

स्वामी विवेकानंद जी अमेरिका गये हैं। शुरू में इनको अपने गुरु (स्वामी रामकृष्ण परमहंस) पर पूरा विश्वास नहीं था। वहां All World Religions Conference (सर्व धर्म सम्मेलन) था। उसमें आपको प्रवचन देना था। बड़ी ऊंची संस्था थी। जिसमें बड़े उच्च कोटि के विद्वान पहुंचे हुए थे। उस समय विवेकानंद की छोटी आयु थी, सोचने लगे कि मैं साधारण सा युवक हूँ। इतने बड़े–बड़े योगियों और संतों के आगे मेरी क्या गिनती है। यह सोच कर घबरा गए हैं। रात को सोये हैं तो परमहंस स्वामी रामकृष्ण प्रकट हुए और कहा कि नरेन! तुम क्यों चिंतित हो रहे हो? प्रातःकाल सम्मेलन में जो कुछ तुम्हें बोलना है वह मैं तुम्हें अभी कंठस्थ कराए देता हूँ। यह कह कर सारा प्रवचन बोल दिया है। विवेकानंद में एक संस्कार था, एक शक्ति थी कि वह श्रुतिधर थे। एक पुस्तक पढ़ लेते थे तो तुरंत ही याद हो जाती थी। उनसे पूछो कि अमुक बात कहाँ लिखी है तो वह पृष्ठ और पंक्ति तक बता देते थे। स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। प्रातः उठे, तो देखा कि जो रात को उनके गुरुदेव ने उन्हें बताया था वह सारा उनके मस्तिष्क में भरा पड़ा है। उन्होंने उस महामंडली में आकर प्रवचन दिया है और इन्हीं का प्रवचन सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ये है गुरु कृपा । यह कृपा कौन कर सकता है। ये सब व्यक्ति नहीं कर सकते। यह महान गुरुजन ही कर सकते हैं। मेरे गुरुदेव (परमसंत महात्मा श्रीकृष्ण लालजी) फरमाया करते थे, ऐसा गुरु हजार या बारह सौ साल बाद कोई एक आया करता है। बाकी सब सेवक हैं, मॉनिटर हैं। रास्ता चल रहे हैं। अपना उद्धार करने का प्रयास कर रहे हैं और दूसरों की भी सेवा कर रहे हैं। गुरु महाराज के स्पष्ट शब्द हैं कि जितनी अधिक सेवा करोगे उतना अधिक लाभ होगा।

लोगों को ऐसे ऊँचे विचार सुनकर घबराना नहीं चाहिए। जहाँ ऐसी वाणी सुनी, ऊंची–ऊंची बातें सुनीं, तुरंत ही समर्पण नहीं कर देना चाहिए। जैसे गुरु को अधिकार है सेवक की परीक्षा लेने का, उसी तरह जिज्ञासु को भी अधिकार है गुरु की परीक्षा लेने का। गुरुदेव कहा करते थे–कोई सौदा लेने के लिए बाजार में जाते हैं तो पांच सात दुकानों पर जाते हैं जहाँ सौदा सस्ता मिलता

है और अच्छा मिलता है वहां से लेते हैं, अन्य दिखाने से नहीं लेते। इसी तरह के उदाहरण देकर कहा करते थे कि गुरु करने से पहले उसकी परीक्षा ले लो गुरु की जो व्याख्या शास्त्रों ने की है परीक्षा करके देख लो कि वह व्यक्ति शास्त्रों के अनुसार वैसा उतरता है कि नहीं उतरता। उसकी रहनी–सहनी, करनी–कथनी इनकी परीक्षा करिये, उनका आचरण कैसा है, वह पैसे का भूखा तो नहीं है, सम्मान का तो भूखा नहीं है, उसके पास बैठने से हमारा मलीन मन पवित्रता की ओर बढ़ता है कि नहीं। मन एकाग्र होता है कि नहीं। उसके पास बैठकर सुख और शांति की अनुभूति होती है या नहीं। गुरु महाराज कहा करते थे कि चाहे दो जन्म या तीन जन्म लग जाएं गुरु धारण करने में, जल्दी नहीं करनी चाहिए। राधास्वामी मत के परमसंत श्रावण सिंह जी महाराज का भी यह कथन था। तो योग्य गुरु की उपलब्धि में यदि तीन चार जन्म भी लग जाएं तो समझना चाहिए कि भाग्य अच्छा है। उनका कहना था कि चार पांच जन्म गुरु की सेवा में लग जाते हैं, उसकी प्रसन्नता और उसकी प्रसादी प्राप्त करने में लग जाते हैं, तब कहीं जाके जिस आशय के लिए गुरु करते हैं वह आशय पूरा होता है।

परन्तु समय बदल गया है। लोग बाग आकर कहते हैं कि साहब दीक्षा दे दीजिये। हम भी मजबूर हो जाते हैं कि अच्छा भाई ले लो। परन्तु वास्तव में यह दीक्षा नहीं है, न तो मैं उतना उतरता हूँ और ना ही लेने वाले उतरते हैं। गुरु बहुत मिल जाएंगे परंतु सच्चे शिष्य बहुत कम मिलेंगे। गुरु महाराज कहा करते थे कि गुरु से संबंध आग से खेलने वाला है। तब भी यदि सौभाग्य से, ईश्वर कृपा से कोई योग्य गुरु मिल जाता है तो कुछ और करने की जरूरत नहीं है, उसी का ध्यान, उसी के चरणों में ध्यान, उसी की सेवा (यानी उसके उपदेशों का पालन करना, यह उसकी सेवा है) इतना ही करना है और कुछ नहीं करना है। घंटों बैठ कर समाधि लगाने की कोई आवश्यकता नहीं। घर बार छोड़ने की कोई जरूरत नहीं, वो तो पारस है। पारस से भी ज्यादा शक्तिशाली है, पारस तो केवल लोहे को सोना बना सकता है। परंतु सच्चा गुरु अपने जैसा बना लेता है। उसमें गुण ऐसे हैं कि अधिकारी शिष्य जब उनकी सेवा में आता है तो बिना

प्रयास ही वह उससे आत्मिक प्रसादी ले लेता है, परन्तु जो जिज्ञासु हो वह सच्चा जिज्ञासु हो उसके हृदय की खिड़की खुली हो। ऐसा नहीं कि वह तर्क बुद्धि वाला हो, यह तो बात गुरु की अच्छी नहीं लगी, यह बात ऐसी है, वैसी है – मारे गए। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को योग्य छात्र बनाने के लिए काफी समय लिया है। हालांकि वह शास्त्रज्ञ था, पढ़ा लिखा था, विद्वान था, और प्रभु की संगति थी तब भी देखिये कि भगवान को कितना समय लगा उसको अधिकारी बनाने के लिए। भगवान की प्रसन्नता है संबंध भी ऐसा है कि अर्जुन के साथ भगवान की बहन ब्याही हुई है। सब कुछ है परन्तु तब भी भगवान को कितना समय लगा है, अर्जुन को उसी स्थिति में लाने के लिए कि वह पूर्ण समर्पण कर सके। समर्पण करना कोई बच्चों का खेल नहीं है। जो व्यक्ति अपने आपको पूरी तरह समर्पण कर देता है अपने गुरु के प्रति चाहे अपने ईष्टदेव के प्रति तो उसमें ईश्वर कृपा तो तुरंत ही प्रवेश हो जाती है। एक क्षण लगता है। परंतु ऐसा होता नहीं है। सच्चा सेवक, सच्चे गुरु बहुत कम मिलते हैं। परन्तु जो सिद्धांत है वो तो है ही, जो सत्यता है वो तो है ही। तो सिर की बाजी लगानी है इस रास्ते में कुछ मांगना नहीं है। बच्चा क्या माँ से कुछ मांगता है? यह प्रभु का गुरु का विरद है कि अपने सच्चे सेवक की देखभाल करें, सब तरह से उसकी रक्षा करें। सेवक तो कुछ अर्पण करके निर्भय हो जाता है। कोई चिंता ही नहीं रहती। हम मांग मांगते हैं कि हमारा यह काम हो जाये। ठीक है, मांगना चाहिए, बाप है गुरु, मांगना बुरी बात नहीं है परंतु कभी–कभी। मांगने की चीज गुरु महाराज कहा करते थे ईश्वर का प्रेम मांगो। हमने नहीं माँगा, आप नहीं मांगते तो क्या आपका दोष नहीं है? हमने भी समय व्यर्थ गंवाया हैं, हम भी पूर्ण शिष्य न बन सके। कुछ लोग पुराने बैठे हैं, गुरु महाराज ने कहा है शरीर छोड़ने से करीब दो साल पहले कि जैसा में बनाना चाहता था एक भी व्यक्ति वैसा नहीं बन सका। ये उनके अंतिम समय का खेद था। हमारा दोष है, हमारी कमी है। उस भंडार में कोई कमी नहीं थी। कमी हमारे अंदर है। हम माया में, वासनाओं में फंसे हैं सम्मान के भूखे थे जो भी सांसारिक बातें होती हैं उनमें

फंसे थे। जैसा कि कबीर साहब कहते हैं कि गुरु और गोविन्द दोनों खड़े हैं, मैं किसके पाँव लागूं? स्वयं उत्तर देते हैं कि गुरु के। क्यों? गुरु ने ही ईश्वर से मिला दिया। सब शास्त्र सब महापुरुष गुरु को ही अधिक महत्व देते हैं, इसलिए यह कहना कि गुरु और परमेश्वर एक ही है, कोई गलत नहीं है। परन्तु होना चाहिए वास्तव में गुरु। गुरु पूर्ण समर्थ है, परन्तु वह सामान्य जीवन जी कर व्यक्तियों को अपने जीवन से उदाहरण देते हैं, उन्हें शिक्षा देता है कि संसार में रहकर कैसे जिया जाए।

गुरु गोविन्द सिंह जी का उदाहरण लीजिये। बालक हैं नौ वर्ष के। उनके पिता की सेवा में कश्मीरी पंडित आए हैं कि औरंगजेब से ब्राह्मणों ने कहा कि यदि गुरुदेव इस्लाम स्वीकार कर लें यानी मुसलमान हो जाए तो हम भी धर्म परिवर्तन कर लेंगे, औरंगजेब ने कहा कि ठीक है। उसने गुरुदेव को बुलाया है और धर्म परिवर्तन के लिए कहा है तो वे नहीं माने। उनको फांसी पर चढ़ाने के आदेश हो गए हैं। गोविंद बालक है। जब पंडित आए तो उसे पता था कि यह बात होगी गुरुदेव जब बालक की ओर देखते हैं। तो बालक गोविंद कहता है कि पिताजी चिंता मत करिये। यह समय है देश को बचाने का, यह समय हिन्दू जाति को बचाने का है। जाइए, मेरी चिंता न करें। एक ही बच्चा है, फिर भी अपना बलिदान दिया है। पिता का बलिदान दिया है, अपनी धर्म पत्नी का बलिदान दिया है, अपनी माता का बलिदान दिया है, चार बच्चे थे उनका बलिदान दिया है। चारों बच्चों की मां कहती है कि मैं क्या करूँगी। उनको पहले ही अंतर से कुछ आभास हुआ था कि चार बच्चे रहेंगे नहीं। उन्होंने गुरु महाराज से कहा है, की ऐसा मुझे आभास हो रहा है। उत्तर दिया है कि हां, ऐसा होना है। माता नहीं जी सकी। उसके बाद चारों को शहीद कराया है, स्वयं शहीद हुए है। ऐसा गुरु जिसकी बड़ी युवा अवस्था है, खड़ा होकर कहता है कि मुझे तो पांच व्यक्ति चाहिए जिसके मैं सिर काटूंगा। उस वक्त भारत सो रहा था हमारी बहनों को, लड़कियों को, शासक उठाकर ले जाते थे। कोई जुबान से बोलता नहीं था। वो कहते थे क्या करें? ऐसे ही ईश्वर की मौज है। इतने उस वक्त गिर चुके थे

हमलोग। देश को उठाने के लिए बलिदान की आवश्यकता थी। तो कहा कि पांच व्यक्ति चाहिए। ऐसी घोषणा की तो लोग बाग माताजी के पास जाकर कहते हैं कि गुरु की अभी छोटी उमर है, ये बात ठीक नहीं कह रहे, इस तरह से सत्संग खत्म हो जाएगा। माँ भी मोह में फंसी है। माता आकर बच्चे से कहती है कि बेटे। यह क्या कर रहे हो तुम? ऐसा खिलवाड़ कर के क्या करोगे? वो कहते हैं कि माता जी, आप चिंता न कीजिये, यह मेरा काम है। और बड़ी दृढ़ता से कहा कि मुझे पांच आदमी बलि के लिए चाहिए। एक एक करके पांच आदमी आए हैं, जिन्हें वह तम्बू में ले गये हैं उनकी परीक्षा ली है। यह देखकर तो सारा समुदाय बलिदान के लिए उठ खड़ा हुआ है। खैर उन पांच व्यक्तियों को अपना प्यारा बना लिया है और उनसे दीक्षा ली है उसी तरीके से जैसे उन्हें स्वयं दीक्षा दी थी। जहां दृढ़ता थी, वहां दीनता भी बड़ी थी। कहने का मतलब यह है कि गुरु शिष्य का संबंध है। शिष्यों को गुरु बना दिया है। गुरु से ही तो दीक्षा ली जाती है।

अब जब गुरु गोविन्द सिंह जी को याद किया जाता है तो उन पांच प्यारों को भी याद किया जाता है। हमारे यहाँ सिक्खों में जब प्रार्थना होती है तो गुरु गोविन्द सिंह जी को जब याद किया जाता है तो उन पांच व्यक्तियों को भी याद किया जाता है। उनको अमर कर दिया। उनको गुरु बना दिया। अपना गुरु बनाया है। ये गुरु शिष्य का जो संबंध है शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता है। भगवान कृष्ण जैसे गुरु हों, अर्जुन जैसे शिष्य हों, उनके लिए यह बानी लागू होती है। जो डाक्टर साहब (मुंद्रिका प्रसाद जी) पढ़ रहे थेः–

''गुरु, गुरु, गुरु, कर मन मोर, गुरु बिना कछ नहीं हो''

हमारे और साधारण व्यक्ति जो गुरु कहलाते है, यह उनके लिए नहीं है। ईश्वर का नाम लेना या गुरु का नाम लेना एक ही बात है। ईश्वर ही गुरु है और गुरु ही ईश्वर हैं, उन दोनों में कोई अंतर नहीं है। जैसा भगवान ने गीता में कहा है, ईश्वर स्वयं ही गुरु रूप धारण करके आता है ऐसे गुरु की जब हम पूजा करते हैं तो हम ईश्वर की ही पूजा करते हैं। हम और आप रास्ते के पथिक,

एक दूसरे का आश्रय लेकर चल रहे हैं और हो सकता है कि वह क्षण आये जब कोई सच्चा गुरु आकर हम–आप सबका उद्धार करे। पढ़ा लिखा व्यक्ति ऐसा वाणी या ऐसे शब्दों को समझता नहीं है वह कहता है यह सब झूठ है। परन्तु यह है भी सही कि इस वेश में लोगों ने जनता का बहुत शोषण किया है। कल एक साहब कह रहे थे कि रावण संत वेश को बदनाम किया है। साधु वेश में आकर उसने सीता का अपहरण किया था। यह इंस्टिट्यूशन (यहां पर 'साधु वेश') बहुत बदनाम है। कोई सच्चा व्यक्ति या सच्चा गुरु यदि आता है भी है तो हम सोचते हैं कि यह गुरु है भी? लोगों का दोष नहीं है जो अपने आप को 'गुरु' कहते हैं, 'संत' कहते हैं, या संन्यासी कहलाते हैं, उनका दोष है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आप सब को कोई ऐसा गुरु मिल जाये जिसके केवल 'तथास्तु' कहने मात्र से उद्धार हो जाये। हमें तब तक ईश्वर से प्रार्थना करना चाहिए, भिक्षा मांगते रहना चाहिए। भिक्षा मांगते रहना चाहिए, अपने जीवन को स्वच्छ करते रहना चाहिए। एक तो साधारण गुरु है परन्तु इस वाणी में जिस गुरु के प्रति संकेत है हम आप वह गुरु नहीं हैं। थियोसोफिकल सोसाइटी में सात प्रकार की दीक्षा होती है। अंतिम दीक्षा के समय भगवान बुद्ध स्वयं प्रकट होते हैं, शरीर रूप में। उनको स्थान का भी पता है। उनकी जो अंतिम दीक्षा होती है बहुत मुश्किल से होती है। एक या दो जन्म में नहीं होती। कोई भाग्यशाली व्यक्ति होता है जिसको अंतिम दीक्षा का प्रसाद मिलता है। ये गलत नहीं है। वो परमात्मा ही गुरु रूप में आता है। भगवान बुद्ध भी परमात्मा का रूप हैं। अब भी आते हैं जिन लोगों ने इस दीक्षा का सौभाग्य प्राप्त किया है, उन लोगों ने अपने अनुभव वर्णन किये हैं। डाक्टर रैनेडे, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे। उन्होंने दक्षिण भारत के संतों पर एक किताब लिखी है उसमें भी वर्णन किया है कि वह सच्चा गुरु आता है और वह अपना इश्वरत्व सच्चे जिज्ञासु को दे देता है। परंतु जब तक ऐसा गुरु न आये, रास्ता चलते रहना चाहिए। धर्म का जीवन व्यतीत करना चाहिए और प्रभु के चरणों में रोना चाहिए और सांसारिक गुरु से मदद लेनी चाहिए।

एक जिज्ञासु को प्रभु के दर्शन करने की बड़ी लालसा थी। जैसा कि मैं अभी कह रहा था कि लोग बाग साधु के वेश में लोगों का शोषण करते है। एक डाकू इस कमजोरी को समझ गया। बड़ा अच्छा प्रभावशाली संत बन कर आया और उस जिज्ञासु से बोला कि ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं परंतु एक शर्त है कि जितना तेरे पास धन है वह सब ईश्वर को अर्पण कर दे। यह सब कुछ देकर भी ईश्वर के दर्शन हो जाए तो यह सौदा सस्ता है। उसने कहा कि ठीक है। धन बांध लिया, डाकू ने कहा कि चल मेरे साथ। चलते चलते एक कुँए पर पहुंचे। कुछ मंत्र पढ़े उसे प्रभावित करने के लिए और कहा कि अब कुएं के अंदर जाकर देखो। जब उस जिज्ञासु ने कुएं के अंदर झुककर देखा तो डाकू ने उसकी टांगें पकड़ कर उस कुँए में फेंक दिया और धन लेकर भागा। ईश्वर बड़े दयालु हैं, जिज्ञासु को सच्ची लगन थी, सब कुछ दे ही दिया उस डाकू को क्या दिया था, परमात्मा को दिया था। भगवान ने पानी तक पहुंचने से पहले ही उसे अपने हाथों में ले लिया और उसको बाहर निकाल लिया। बाहर निकल कर उसने डाकू को आवाज दी, कि अरे भाई, दर्शन तो हो गए। तू कहाँ भागा जा रहा है? तू तो मेरा मार्गदर्शक है तू कहाँ भागा जा रहा है? यह कह कर ये डाकू के पीछे भाग लिया। भगवान भी कह रहे हैं कि मैं भगवान हूं मगर वह जिज्ञासु विश्वास नहीं करता कि ये भगवान हैं। ऐसी तड़प ऐसी जिज्ञासा हो। भले ही गुरु पूर्ण न हो। परंतु शिष्य यदि पूर्ण होता है तो प्रभु किसी न किसी रूप में यहाँ तक कि शालिग्राम जी की जो मूर्ति होती है उसमें प्रकट हो जाते हैं, धन्ना भगत की कथा सुनी होगी।

यह पुरानी बातें हैं जो शायद आप नहीं मानते होंगे। अब भी अयोध्या में एक संत हैं (परमहंस बाबा राममंगल दास महाराज, गोकुल भवन, वशिष्ठ कुंड) जिन्होंने शालीग्राम जी की मूर्ति में भगवान के दर्शन किए। भगवान के एक ही रूप के दर्शन उन्होंने नहीं किया कई रूपों में दर्शन किए। खैर अभी वे निर्वाण को प्राप्त हुए, लगभग 85–86 साल की उनकी आयु होगी ।

जिज्ञासु के भीतर में कितनी तड़प है उसका महत्व है। गुरु मिल जाता है ईश्वर गुरु रूप होकर आ जाता है। परन्तु वह इस प्रतीक्षा में रहता है कि हमारे भीतर में सच्ची जिज्ञासा कब उत्पन्न होती है, हमारा मोह कब टूटता है, हम अहंकार को कब त्यागते हैं। यह बहुत कठिन है। मोह और अहंकार का त्याग करना बहुत कठिन है। हम सब इंद्रियों के सुखों का त्याग कर सकते हैं परन्तु मोह और अहंकार का त्याग करना बहुत ही कठिन है।

तो सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न करें। ईश्वर की कृपा गुरु रूप में अवश्य होती है। यह प्रभु का विरद है, प्रभु का नियम है, सत्यता है, आज तक होता रहा है, आगे भी होता रहेगा। इसलिए जिसके हृदय में सच्ची जिज्ञासा है उसे घबराना नहीं चाहिए। वो पत्थर को भी गुरु बना लेगा तो भी उसके दर्शन होंगे। वो अयोध्या के संत जिनका मैं जिक्र कर रहा था वो बाल्य अवस्था में ही गुरु कृपा से, इस अवस्था को प्राप्त हुए। वे सिख नहीं है। वे गुरु नानक देव के नाम से तो परिचित थे, परन्तु उनके पुजारी नहीं थे। उनके गुरु जरूर नानक पंथी थे, वे भी सिख नहीं थे। गुरु नानक की एक वाणी है पैंतीस अक्षर ये हमारी वर्णमाला है क, ख, ग, इत्यादि। उन पैंतीस अक्षरी के प्रत्येक अक्षर के आगे उपदेश है तो वो सारी की सारी वाणी उस महापुरुष के हृदय में उतरी है और उन्होंने फिर लिखवाई है उनको कंठस्थ हो गई है। हिंदी थोड़ी सी पढ़े थे, परंतु पंजाबी नहीं जानते थे। परन्तु सच्ची जिज्ञासा थी, प्रभु मिलन की। अब वे संत विराजमान नहीं है। (इस पुस्तक के छपने से पूर्व वे निर्वाण को प्राप्त हुए) अध्यात्म में कोई धर्म नहीं देखा जाता कि कौन जिज्ञासु हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, या सिख है। मुसलमानों का उद्धार हुआ है हिन्दू संतों के हाथों में, हिन्दुओं का उद्धार हुआ है मुस्लिम फकीरों के हाथ में। जो सच्चे संत हैं सच्चे फकीर है वे इन बातों की तरफ नहीं देखते। आत्मा का कोई धर्म नहीं, वहाँ कोई संप्रदाय नहीं है, वहां कोई दीवारें नही हैं। सत्यता सब छोटी–छोटी बातों से ऊंची है। यह बातें भगवान कृष्ण ने, भगवान राम ने, हमको सिखलाई लेकिन हम सब कुछ भूल गए। भगवान जाते हैं, ऋषि मिलते हैं और कहते हैं कि भगवान सरोवर में

मलीनता है स्वच्छता नहीं है। यदि आप उसमें स्नान करने की कृपा करें तो वह साफ निर्मल हो जाएगा। भगवान उसमें स्नान करते हैं परन्तु सरोवर साफ नहीं होता तो वे कहते हैं कि शबरी जो भीलनी है उससे जाकर कहिये, उसके स्नान करने से तालाब साफ होगा। वे ऋषि लोग बड़े अहंकार में थे कि हम तो बड़ी ऊंची जाति के हैं और हमारी बड़ी तपस्या है। अब हम उस शूद्र स्त्री से जाकर कहें कि वो सरोवर में स्नान करे। ये बीमारी शुरू से ही हमारे भारत में रही है और महापुरुषों ने इसको दूर करने की कोशिश की पर नहीं हुई। इसी कारण से हमारे देश में विभाजन वृत्ति रही है और हम कमजोर रहे हैं। तो मजबूरी में शबरी से कहा गया, मरता क्या नहीं करता। ऋषियों ने भगवान का आदेश शबरी को सुनाया। उसने सरोवर में स्नान किया तो वह निर्मल हो गया। भगवान के घर में जाति भेद नहीं कि यह छोटी जाति का है या यह बड़ी जाति का है। कौन शुद्र है और कौन ब्राह्मण है? हृदय में जिसके ईश्वर विराजमान है वही ब्राह्मण है। चाहे वह ब्राह्मण के घर पैदा हुआ यदि वह कर्मों से शुद्र है, तो वह शुद्र है, कर्मों की प्रधानता है, अध्यात्म के मार्ग में।

(संत प्रसादी – भाग 3 से उद्धृत)

सच्चाई को समझो

यह नितांत सत्य है कि संसार में जो कुछ होता है वह ईश्वर की इच्छा के बिना नहीं होता। ईश्वर की शक्ति अनंत और अपार है। अपने आपको उस शक्ति के समर्पण कर दो और उसे अबाध रूप से अपना कार्य करने दो। इससे आप स्वयं उन्नति करेंगे और दूसरों को भी सुख मिलेगा। होगा वही जो ईश्वर करेगा। यदि उसकी शक्ति के काम में बाधक बनोगे तो सिवाय दुखी होने के और कुछ हाथ नहीं आएगा। इसलिए सच्चाई को समझो और ईश्वर में भरोसा रखो कि वही तुम्हें सच्ची स्वतंत्रता और शान्ति दे सकता है। उसकी खुशी में खुश रहने की आदत डालो और अपनी नित्य की प्रार्थना में यह मनाते रहो कि हे प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो।

गुरु-सतगुरु

गुरु की तलाश में एक जन्म भी लग जाय तो कोई हर्ज नहीं। जब गुरु धारण कर लो तो दरवाजा छोड़ कर मत जाओ। तुम किसके शिष्य बनते हो? क्या आदमी के? नहीं, आप तो ईश्वर को गुरु धारण करते हैं। जिस शरीर में ईश्वर बसता है वह तो मिट्टी का बना हुआ है। वह तो मन्दिर है। मन्दिर की पूजा तो नहीं करते, उसके भीतर जो मूर्ति होती है, पूजा उसकी की जाती है।

******

दो तरह के आदमी होते हैं। एक जिज्ञासु दूसरा सत्संगी। जिज्ञासु वो है जो देख रहा है कि कौन सा रास्ता अपनाऊँ। सत्संगी वह है जिसने रास्ता अपना लिया है। यह बाजार नहीं है कि एक दुकान देखी, फिर दूसरी देखी और सब जगह का मजा चखते रहे। सत्संग में शामिल हो जाने के बाद ऐसा करना गलत है। लड़की की शादी हो जाने पर जब वह बहू बन कर ससुराल में जाती है तब सास कुछ दिनों उसके पास रहती है और जब बहू बाल–बच्चों वाली हो जाती है और सयानी हो जाती है तब सास उसके पास नहीं रहती। वह अपने घर में स्वतन्त्र है। हमारे सत्संग का भी यही हाल है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध ऐसा ही है जैसा पति और पतिव्रता पत्नी का। सत्संग में शामिल होने से पहले आपको पूरी आजादी है कि खूब घूमिये और जहाँ चाहें वहाँ के सत्संग और उसके अधिष्ठाताओं की जाँच कीजिये। लेकिन जब एक बार इस सत्संग में शामिल हो जायें तब दूसरी जगह नहीं जाना चाहिये वरना नुकसान हो जायेगा।

******

पहली शर्त यह है कि गुरु और शिष्य में परस्पर प्रेम हो, मन की दुई मिटकर एक हो जाय, दोनों का सतोगुणी मन मिल जाय, दोनों का तम और रज खत्म हो जाय, तब फायदा होगा वरना (अन्यथा) गुरु कितनी भी कोशिश करे, आत्मा का अनुभव नहीं करा सकता।

******

किसी ऐसे महापुरुष का सहारा लो जो इस रास्ते पर चल चुका हो। केवल इतना करो कि संसार भर की चीजों में जो तुम्हारा प्रेम बंटा हुआ है, उसे समेट कर उसके चरणों में लगा दो। यही गुरु धारण करना है। बिना पथ–प्रदर्शक को साथ लिये, बिना गुरु किये, रास्ता तय नहीं होगा। निर्गुण का ध्यान कैसे हो सकता है? इसलिये उस महापुरुष की शरण लो जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। उसका स्थूल शरीर मन्दिर है जिसमें निर्गुण परमात्मा विराजता है। उससे प्रेम करने से, उसका ध्यान करने से तुम्हें भी आत्मदर्शन होगा।

******

परमार्थ के काम में जल्दबाजी नहीं होती। फुल डिटरमिनेशन (दृढ़ संकल्प) होना चाहिए। कुछ हर्ज नहीं अगर तरक्की नहीं होती है। जब चल पड़ो तब चलते जाओ, रास्ते से मत हटो, कामयाबी शर्तिया होगी। सभी शुरू में नकल (अनुकरण) करते हैं, असल (यथार्थ) तो बाद में आती है। लड़कियाँ बचपन में झूठा ब्याह रचाती हैं। फिर एक दिन अपना ब्याह भी कर लेती हैं। गुरु के दरवाजे से न हटें। कहा है– ''द्वार धनी के पड़ रहे, धक्का धनी का खाय।'' मुसीबतें आती हैं, गुरु इम्तहान भी लेते हैं, मगर चाहे कुछ भी मिले, सुख या दुख, वह तुम्हारी जान है। सबसे ज्यादा उसी को अजीज (सर्वप्रिय) रखो।

******

और तरीकों में सिर्फ रास्ता बताया जाता है और अभ्यास कराया जाता है। लेकिन हमारे यहाँ इससे आगे भी कुछ और है। गुरु अपनी कृपा, तवज्जह और इच्छा–शक्ति से शिष्य के सतोगुणी मन को अपने मन में मिलाकर ऊपर ले जाता है जिससे शिष्य की आत्मा शहरी Atmosphere (वातावरण) से ऊपर उठकर ब्रह्माण्डी मन का आनन्द लेने लगती है और इससे जल्दी तरक्की होती जाती है।

******

गुरु के निजी रूप का (प्रकाश रूप का) नूरानी रूप का ध्यान किया जाता है। चाहे ध्यान में पहले उसकी Physical-body (स्थूल शरीर) ही दीखती हो मगर वह नूरानी (प्रकाश रूप) है। अगर गुरु की तस्वीर का ध्यान करते हो तो यह मूर्ति–पूजा हो गई। जिस का ध्यान करोगे वही मिलेगा। अगर तस्वीर या मूर्ति का ध्यान करते हो तो मरने के बाद वही मिलेगी। इज्जत के तौर पर घर में तस्वीर रख लेना और बात है। सामने बैठकर भी जो ध्यान किया जाता है वह उनके नूरानी रूप (प्रकाश रूप) का ध्यान किया जाता है। वह प्रकाश बराबर सूक्ष्म होता जाता है और आगे जाकर सतपुरुष से मिला देता है।

******

गुरु में कितनी ही विद्या क्यों न हो, कितना ही ज्ञान क्यों न हो, कितनी ही शक्ति क्यों न हो, अगर उसने अपने आप को ईश्वर को समर्पण नहीं किया और खुदी (अहंपना) बाकी है तो वह सच्चा गुरु नहीं है। अगर अधिकारी शिष्य हो और ऐसा पूर्ण गुरु मिल जाय तभी ईश्वर दर्शन होते हैं लेकिन शर्त यह है कि पूर्ण श्रद्धा से गुरु के बताये हुए रास्ते पर चलें और दुनियाँ की बड़ी से बड़ी चीज त्यागने में न हिचकिचाएं, बल्कि खुशी से त्याग दें।

******

दुनियाँ अज्ञान में फंसी है। यहाँ हर काम उल्टा है। यहाँ आदमी की पैदाइश भी उल्टी होती है। इस दुनियाँ से निकलो। मन की हालत को देखते चलो और गुरु की कृपा उनके प्रकाश की धार फ़ैज़, का अपने ऊपर अनुभव करते रहो। यही सत्संग है। गुरु कृपा तब तक होती है जब तक उसके कहने में चलते हो वरना वह कृपा जाती रहती है। उसकी रजा में राजी रहो। गुरु का सिर्फ एक रूप है। उसका एक ही काम है कि बिछुड़े जीवों को ईश्वर से मिला दे। इसलिये तुम उसके साथ Co-operate (सहयोग) करो। अगर उसके साथ Rebellion (विरोध) करोगे तो फायदा क्या होगा? तुम्हें तोड़ कर रख देगा। जो उसने कहा

है उसे दिमाग में रखो। ये देखते रहो कि इतना कर आये, इतना और करना है। यही प्रेम का रूप है।

******

प्रकाश रूप के दर्शन गुरु के अन्दर ही होते हैं। गुरु के स्थूल शरीर के अन्दर, पर्दे में क्या है? (1) अन्नमय कोष (2) आत्मा। मिट्टी के शरीर की मूर्ति बनाये ईश्वर बैठा हुआ है। अगर प्रकाश के रूप में दर्शन होते हैं तो रास्ता ठीक है।

******

सन्त के पास बैठ कर आनन्द का अनुभव होता है। अगर सौभाग्य से ऐसा कोई वक्त का पूरा सन्त मिल जाय, वही गुरु है। वह तुम्हें भवसागर से पार करने आया है। उससे प्रेम करो। अगर तुम्हारी आत्मा दरअसल परमात्मा को पाने की इच्छुक है तो वह उससे चुपट जायेगी।

******

अगर ठोकरें मारे तो भी गुरु का दरवाजा छोड़कर मत जाओ।

******

हर संत सतगुरु नहीं होता है। सतगुरु उसी को कहते हैं जो शिक्षक का काम करता है। जैसे हरेक ग्रेजुएट (स्नातक) टीचर (अध्यापक) नहीं होता। असली टीचर वह है जिसको शिक्षकों और शिष्यों की भलाई इष्ट है, उनसे प्रेम करता है और अपनी तालीम (शिक्षा, विद्या) को प्रवेश कर सकता है।

******

अधिकार बनाना चाहिए। वह इस तरह बनेगा कि धर्म पर, सच्चाई पर और सन्तों के बताये हुए रास्ते पर चलो। अधिकार और संस्कार बनाना निज–कृपा कहलाती है। जब निज–कृपा होगी तभी गुरु–कृपा व ईश्वर–कृपा होगी।

******

जो अवस्था हम वर्षों की तपस्या से नहीं पा सकते वह क्षण मात्र में गुरु कृपा से मिल जाती है।

******

गुरु उसको कहते हैं जिससे बेहतर, खुशतर और प्यारी वस्तु दुनियाँ में और कोई न हो और जिसके लिये दुनियाँ की हर वस्तु छोड़ी जा सकती हो।

******

गुरु बड़े सौभाग्य से मिलता है। अगर सौभाग्य से मिल जावे तो उसके सत्संग से पूरा फ़ायदा उठाना चाहिये। गुरु की जिन्दगी में ही आत्मा का साक्षात्कार कर लेना चाहिये। बगैर गुरु के आम तौर पर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

******

गुरु का तो वास्तव में बड़ा भारी सहारा होता है। अगर सच्चा प्रेम है तो जहाँ कहीं फसेंगे वहीं से वे निकाल लेंगे। अगर किसी इच्छा को आप नहीं दबा सकते हैं, तो गुरु का सहारा लेकर धर्मशास्त्र के अनुसार भोगो। लेकिन सही और गलत का ध्यान रहे, धर्म का सहारा न छूट जाय।

******

जीवात्मा, आत्मा और अन्त:करण की मिलौनी का नाम है। जीवात्मा का गुरु आत्मा है।

******

संत की छः पुश्तें (पीढ़ियाँ) अपने आप तर जाती हैं। दुनियाँ में उसके जितने निकट सम्बन्धी हैं उनका ख्याल उसे आता है। ऊपर के वंश में वह माँ बाप और दादा तक सोचता है और नीचे के वंश में बेटे और पोते तक। खुद वह परमात्मा में लीन रहता है इसलिये जिसका भी ख्याल करता है उस पर असर जरूर पड़ता

है। शिष्य अगर गुरु का ध्यान करे तो जिस स्थान पर गुरु की उस वक्त बैठक होती है वहाँ तक का फायदा शिष्य को आप से आप हो जाता है।

******

जिस व्यक्ति ने जीवात्मा के ऊपर के आवरण उतार डाले उसके शरीर को चलाने वाला आत्मा है और वही सन्त, औलिया, पैगम्बर, गुरु इत्यादि के नाम से जाने जाते हैं।

******

सतगुरु का सहारा जरूर लेना पड़ेगा। बिना उसके सहारे के जीव की सामर्थ्य नहीं कि इस अभ्यास को अपनी हिम्मत के भरोसे पर कर सके। जब सुरत शब्द की धार पर सवारी करके चलता चला जायेगा, तो बूंद पहले सिन्धु में समा जायेगी (यानी गुरु में लय होगा जिसे सूफियों में फना–फिल शेख कहते हैं) और इससे आगे चलकर स्रोत में पहुँच जायेगी (यानी अनामी पुरुष में लय हो जायगा जिसे सूफियों में फनाफिल रसूल कहा गया है) इसके पश्चात् आदि पुरुष में लय हो जायेगा जिसे सूफियों में फनाफिल अल्लाह कहते हैं। इसी का नाम सच्ची भक्ति और सच्चा उद्धार है।

******

जब तक विभीषण साथ नहीं था लंका पर विजय नहीं हो सकी। इसलिये सच्चे भेदी गुरु को साथ लो। उससे प्रेम करो और उसमें विश्वास रखो। रास्ता आसानी से तय हो जायेगा।

******

गुरु की सन्तान की बेकदरी न करो। उसमें गुरु का अंश मौजूद है।

******

ईश्वर गुरु रूप में आकर आवागमन के चक्कर से छुड़ाता है। दुनियाँ से हमेशा–हमेशा के लिए निकालता है। जो लोग दुनियाँ चाहते हैं उनको सन्तों से असली फायदा नहीं होता । सन्त तो दुनियाँ उजाड़ते हैं, उसके बन्धन ढीले करते हैं। असली फायदा उन्हें होता है जो दुनियाँ से उद्धार चाहते हैं।

******

बिना रहबर (पथ प्रदर्शक) को साथ लिये, बिना गुरु किये रास्ता तय नहीं होता। निर्गुण का ध्यान कैसे हो सकता है? इसलिये उस महापुरुष की शरण लो जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। उसका स्थूल शरीर मन्दिर है जिसमें निर्गुण परमात्मा विराजता है। उससे प्रेम करने से, उसका ध्यान करने से तुम्हें भी आत्म–दर्शन होगा। इसलिये हमारे यहाँ के तरीके में गुरु धारण करते हैं। गुरु की पूजा को ही मुख्यता देते हैं। गुरु और ईश्वर को दो नहीं मानते।

******

इन्सानी जिन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आपको पहचाने कि मैं क्या हूँ। ईश्वर को पहचाने और उसमें अपनी हस्ती लय कर दे। जो इस आदर्श का रास्ता दिखावे वही सच्चा गुरु है। जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है वही सच्चा भक्त है। जब ऐसा शिष्य हो और ऐसा गुरु हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति मुमकिन है।

******

ख्याल से ही हम भ्राँति में फंसे हैं और ख्याल से ही छूटेंगे। यह सारी दुनियाँ ख्याल से ही बनी है और ख्याल से ही छूटेगी भी । इसलिये सतगुरु का ख्याल बाँधकर इन सभी सांसारिक वासनाओं तथा भोगों को काटते जाओ। यही सबसे नजदीक रास्ता ईश्वर को पाने का है।

******

यदि किसी सन्त के पास बैठने पर आपकी कमियाँ आपके समक्ष उभर आयें, अपनी कमजोरियों की जानकारी मिलने लगे और उन्हें दूर करने की भावना को उभार मिले, ईश्वर सम्बन्धी विभिन्न जिज्ञासाएँ जाग्रत होने लगें, मन में अनेक सत–सम्बन्धी भावनाओं को उत्साह मिलने लगे तो बस इससे आप यह अनुमान कर सकेंगे कि यहाँ पर आपको शान्ति मिल सकती है। अब कुछ दिन आप उनका सतर्कता के साथ सत्संग करिये। यदि आपका हिस्सा उन सन्त के पास हुआ तो वे भी आपकी ओर विशेष रूप से आकर्षित होंगे और फिर सम्भवतः आपको भटकना नहीं पड़ेगा। यदि किसी सन्त से आपका नाता जुड़ गया है तो यह सत्य है कि संकटग्रस्त परिस्थितियों में गुरु से सहायता मिलती है। आगे प्रगति होने पर ऊपरी लोकों में भी गुरु के दिव्य दर्शन होते हैं और उसके विदेह होते हुए भी मार्ग निर्देशन मिलता रहता है।

******

सन्त के चारों ओर का वातावरण आध्यात्मिकता से भरपूर रहता है। किसको कितना लाभ होता है यह जिज्ञासु एवं भक्त की ग्रहण शक्ति पर निर्भर है परन्तु यह निश्चयात्मक तथ्य है कि बगैर गुरु के ईश्वर का प्रेम नहीं मिल सकता। सत् तक तो कोई भी व्यक्ति अपने आपको ले जा सकता है।

******

सतगुरु वह है जो तीन चीजों से अलग हो–कामिनी, कन्चन और यश। ईश्वर का पूर्ण भक्त हो, सिवाय ईश्वर की बात के दूसरी बात न करे, उसे आपसे कोई गरज न हो, उसके पास बैठने से मन शान्त हो, उसकी कथनी और करनी एक जैसी हो और सिवाय दूसरों की भलाई के और कुछ न चाहता हो।

******

जिस गुरु के ध्यान के साथ–साथ जीवन में एक बार भी आपको प्रकाश नजर आया है तो समझ लीजिये कि वह सचखण्ड तक पहुंचा हुआ है।

******

गुरु का स्थूल शरीर गुरु नहीं है, ईश्वर उस स्थूल शरीर के द्वारा प्रकट हो रहा है। उसमें अपने आप को लय कर दो। जब सम्पूर्ण लय हो जाओगे तो अपने आपको पहचान जाओगे कि तुम कौन हो।

******

एक गलतफहमी (भ्रम) आम तौर पर यह फैली हुई है कि पहले गुरु के चोला छोड़ने पर दूसरे गुरु का ध्यान करना चाहिए और पिछले गुरु से कोई वास्ता न रखना चाहिए। जब गुरु उस पवित्र हस्ती का नाम है जो जीते जी ही ईश्वर में लय हो चुका है तो शरीर छोड़ने पर यह कैसे समझ लिया जाये कि वह अब मौजूद नहीं है। चोला छोड़ने पर आत्मा आजादी हासिल करके ईश्वर रूप में हर जगह मौजूद रहती है। इसलिये उसको मरा हुआ समझना गलती है। उसके चोला छोड़ने पर उसी का ध्यान करना चाहिए। हाँ, अगर अभी तक तमोगुणी और रजो-गुणी मन पर बैठक है या सतोगुणी मन पर बैठक तो है किन्तु वह स्थायी नहीं है तो अपने उस बड़े भाई के संरक्षण और आदेशों से सहायता लेते रहना चाहिए जिसको गुरु इस कार्य के लिये नियत कर गया हो, और यदि ऐसा कोई भाई न हो तो किसी दूसरे गुरु से सत्संग करके फायदा उठा सकता है।

******

(नवनीत भाग-1)

प्रार्थना और ध्यान दोनो इंसान के लिए बहुत जरूरी हैं।
प्रार्थना में भगवान आपकी सुनते हैं,
और ध्यान में आप भगवान की सुनते हैं।

प्रेरक प्रसंग

प्रार्थना हृदय को शक्ति प्रदान करती है

प्रार्थना द्वारा भगवान से सहज में सम्पर्क हो जाता है। प्रार्थना करते समय जब आप अपने हृदय को ऊँचा उठाकर ईश्वरोन्मुख करते हैं तो सबसे पहले आप अपने को उसके निकट पाते हैं। फिर आपका उससे सम्पर्क होने लगता है और धीरे–धीरे एक दिन वह आता है जब आप अपने को उसमें लय कर देते हैं। आपका मन जो सांसारिक भली–बुरी वासनाओं से परिपूर्ण है, प्रार्थना द्वारा शुद्ध होने लगता है। और आपका ध्यान संसार की बातों से सिमटकर एकाग्रता के साथ ईश्वरमुखी होने लगता है। दीनता और समर्पण की भावना आपके हृदय में जाग्रत होने लगती है, आपके मन की कठोरता पिघलने लगती है और आप उस स्रोत में समा जाते हैं जहाँ से आपका उद्‌गम हुआ है। प्रार्थना आपके हृदय को शक्ति देती है, उसे बलवान बनाती है, और उसे आनन्द से भर देती है। वह आपको सिखाती है कि किस प्रकार साहस और धैर्यपूर्वक आपत्तियों का सामना करो और आपके हृदय के भीतर में जो छिपी हुई ईश्वरीय शक्ति का भण्डार है, उससे किस प्रकार ज्ञान और शक्ति प्राप्त करो।

(पुस्तक सद्‌ज्ञान–सद्‌विचार से)

नाम–ए–खुदा है हर जगह
ज़िक्र–ए–खुदा कहीं कहीं,
ज़िक्र–ए–खुदा हो भी अगर
तो खौफ़–ए–खुदा कहीं कहीं ।

खुदी से आशना हो कर
खुदी पे निसार हो जा,
मिटा के अपनी हस्ती
सरापा–ए–जुस्तजू हो जा ।

दिव्य धारा से

अनमोल वचन

ईश्वर 'सत्' स्वरूप है। मनुष्य के भीतर में आत्मा बैठी है वह भी सत् स्वरूप है, उसको पहचानो और अपने आप को जानो।

*****

हम जो कुछ करते हैं, उसमें सोचते हैं कि 'मैं ही कर्त्ता हूँ'। हमारे मन में जब तक कर्ताभाव और भोक्ता भाव रहेगा तब तक कर्मों का चक्र और जन्म मरण का चक्र चलता ही रहेगा और हम भवसागर से कभी भी पार नहीं उतर पायेंगे, मुक्त नहीं होंगे।

*****

आत्मस्थित हो कर जो कार्य हमारे द्वारा होगा उसका प्रभाव हमारे चित्त पर नहीं पड़ेगा। उसका अक्स हमारे चित्त पर पड़ेगा, उसकी छाया हमारे चित्त पर नहीं पड़ेगी तो हमारा चित्त निर्मल रहेगा और कर्म फल नहीं बनेगा।

*****

जो आत्मा के गुण हैं, परमात्मा के गुण हैं, वे व्यवहार में होने चाहिए। साधन तो यही है कि हम आत्मा हैं, इस आत्मा को पहचान कर संसार में रहें और अपना नित्य व्यवहार करें।

*****

संसार में रहते हुए हमें उत्तेजना, प्रकोप, शत्रुता, आक्रमण आदि का सामना करना पड़ेगा, दुख और तकलीफें आयेंगी, परन्तु जीवन की कला यह है कि हम कमल पुष्प की तरह रहें, सदा खिले हुए रहें। चित्त पर किसी प्रकार की छाया अंकित न हो।

*****

यह तो संसार है। इसमें सब ओर से उत्तेजना मिलेगी ही। बाहर के लोग तो हमें फिर भी कम उत्तेजना देते हैं, परन्तु परिवार के लोग ज्यादा उत्तेजना देते हैं। तितीक्षा का अभ्यास करना चाहिए, संतोष को अपनाना चाहिए। सहनशीलता को अपनाना चाहिए।

*****

जिज्ञासु को उदासीनता अपनानी चाहिए। उदासीन वह है जो मन से संसार से उदासीन हो जाता है। उदासीनता का मतलब है भीतर में समझ आ जानी चाहिए, ज्ञान आ जाना चाहिए कि संसार नित्य रहने वाला नहीं, तो इसके प्रति मोह क्यों होना चाहिए। आसक्ति क्यों रखें, संसार से मन को हटाकर ईश्वर से अनुराग किया जाये।

*****

कितनी भी दुखद घटना आ जाये, कितना ही सुख आ जाये, हमारी समता भंग न हो। जब तक समता नहीं बनेगी, मानसिक संतुलन नहीं बनेगा, तब तक सच्ची शांति नहीं मिलेगी।

*****

बाहर में इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। कम बोलना चाहिए, आवश्यक होने पर ही बोलें, वर्ना चुप रहें। अधिक बोलने पर बात का वजन घटता है और बहुधा लोग मानते भी नहीं। वाणी के संयम से ओज बढ़ता है और लोग उसे मान भी लेते हैं।

*****

भीतर में तनिक भी अहंकार न रहे – मेरापन न रहे। '........तू.....तू' की रट रहे और इसी रट में उस सर्वोच्च स्थिति में पहुँच जाएं जहाँ का वर्णन करने के लिए शब्द नहीं होते। यह स्थिति रोम रोम में बस जाये।

*****

अपने आप को भीतर में साफ करते चले जायें, निर्मल, निर्मल से भी निर्मल।

*****

साधक को बालकपन के स्वभाव का अनुकरण करना चाहिए। ईश्वर कृपा के अनुभव में जब भी विचार उठें, उन्हें बंद करिये। साँस जो चल रही है, उसकी अनुभूति करिए तथा अंतर में प्रकाश का पुंज जो दिखे उसी में अपने आप को लय कर दीजिये।

*****

'मैं' का अहंकार जब तक पूर्ण रूप से नहीं निकलेगा तब तक इष्ट की सच्ची अनुभूति संभव नहीं।

*****

यदि किसी से हमारी शत्रुता है तो उसे क्षमा कर दें। क्षमा ही परमात्मा का स्वरूप है। परमात्मा का गुण है क्षमा, यह आपका स्वभाव बन जाये, आपकी दीनता में कोई कितनी ही उत्तेजना दे, शत्रुता करे, आप क्षमा कर दें।

*****

गम्भीरता से प्रेम की तरफ बढ़ाना पड़ेगा। परमात्मा के, गुरू के गुणों को अपनाना होगा और मन पर उसका प्रकाश डालना होगा। मन को अपने अधीन करना होगा। तब जाकर ईश्वर प्रेम का संगीत बजेगा, तभी शांति और आनन्द की प्राप्ति होगी।

*****

'प्रेम' प्रतीक्षा में है। साधना यही करनी है कि प्रेम स्वरूप परमात्मा के चरणों में प्रेममय होकर यह मन स्थिर हो कर बैठे।

*****

भक्त चतुर्भुजदास

मध्यकालीन भारतीय परिवेश चतुर्दिक भक्तिरस से सराबोर हो रहा था। दक्षिण में जहाँ अलवार (वैष्णव) एवं नयनार (शैव) संत भक्ति की अलख जलाए हुए थे वहीं उत्तर में निर्गुण–सगुण प्रेमी संत, सूफी, औलिया, ज्ञान मार्ग एवं प्रेमाभक्ति के राजपथ पर आमजन को सैर करवा रहे थे। दिशाहीन और भ्रम की स्थिति में पड़े समाज को भक्ति संत प्रभु प्रेम की चासनी का स्वाद देकर उनके अंतर और बाह्य जगत की जिजीविषा को जिंदा रखे हुए थे। उत्तर भारत में भक्ति की विभिन्न धारा में से प्रमुख धारा कृष्ण भक्ति की थी, जिसके एक प्रमुख आचार्य स्वनाम धन्य आचार्य प्रवर श्री वल्लभाचार्य जी थे। श्री वल्लभाचार्य प्रतिपादित पुष्टि मार्गीय कृष्ण भक्ति शाखा, वल्लभी सम्प्रदाय में अनेक महान भगवद् भक्त हुए। इस संप्रदाय के भक्तों ने स्वयं को विकसित करना अपने जीवन का लक्ष्य धारण किया था, जो ''परमारथ के कारन साधुन धरा शरीर'' जैसी दृष्टि को व्यवहार में चरितार्थ कर रहा था।

वल्लभी संप्रदाय के संत भक्त कवि जो अष्टछाप एवं अष्टसखा के रूप में जगत प्रसिद्ध थे न केवल अपने ईष्ट श्रीनाथ जी की त्रिविध सेवा के प्रति समर्पित थे अपितु मध्यकालीन समाज के ढ़हते आत्मविश्वास को भी अपने अराध्य नटवर नागर की लीला सरिता में डुबकी लगवा कर पोषित जीवन का लक्ष्य प्रदान कर रहे थे। अष्टछाप अथवा अष्टसखा संतों में सूरदास, परमानंद दास, कुंभनदास, कृष्णदास पुष्टिमार्गीय वल्लभ संप्रदाय के संस्थापक आचार्य वल्लभाचार्य द्वारा दीक्षित थे, जबकि नंददास, चतुर्भुज दास, गोविन्दस्वामी एवं छीतस्वामी–गोसांई विठ्ठलनाथ के दीक्षा शिष्य थे। भगवत् सेवा, भगवत् लीला चिंतन एवं भगवत् लीला गायन इन अष्टछाप के भक्त संत कवियों का एकमात्र श्रेय और प्रेय था।

अष्टछाप के भक्त कवि महात्मा कुंभनदास जी श्रीनाथ जी के अनन्य भक्त

थे, जिनका कृष्ण के प्रति सख्य भाव का प्रेम था। मान्यता है कि कुंभनदास जी श्री कृष्ण के अर्जुन सखा अवतार थे। श्री कुंभनदास जी आठों पहर भगवत चिंतन में लीन रहते थे तथा सदा संत सत्संग एवं भगवत चर्चा की आकांक्षा रखते थे। छः पुत्रों तथा एक पुत्री का भरा पूरा परिवार था किन्तु सभी मुख्यतः मायानुरागी एवं बहिर्मुख थे जिसके कारण उन्हें घर पर भगवत रस चर्चा एवं सत्संग का वातावरण प्राप्त नहीं था। इस कारण नटवर नागर के अखंड प्रेमी कुंभनदास जी उदास रहा करते थे। एक बार स्वयं ठाकुर जी द्वारा उदासी का कारण पूछने पर उन्होंने वस्तुस्थिति बताते हुए एक प्रभु प्रेमी पुत्र की इच्छा प्रकट की। भगवान ने अपने अर्जुन सखा को ठीक बारहवें महीने भगवत अनुरागी पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद प्रदान किया। तब से भक्त कुंभनदास प्रसन्नचित्त रहते, भगवान की विविध लीला का चिंतन किया करते और समय बीतता जाता। एक दिन भक्त कुंभनदास जी भगवान की माखन चोरी लीला का मानस दर्शन कर रहे थे, जिस क्रम में दो अतिरिक्त हाथ से पिताम्बरी सम्हालने वाली चतुर्भुज छवि का बिंब देख रहे थे कि तभी किसी ने आकर बालक के जन्म होने की सूचना दी। सहसा ही भक्त कुंभनदास भावानुराग में गाने लगे –

आयो चतुर्भुज को दास घर आयो ।
सत्संग हित श्रीनाथ जी पठायो ।।

इस प्रकार अनायास ही बालक का नाम चतुर्भुज रखने की आकांक्षा जाग पड़ी जिसे जन्म के 11वें दिन नामकरण संस्कार के समय अंतर्यामी गुरूदेव गुसाईं विठ्ठलनाथ जी ने 'चतुर्भुज दास' नाम रख कर पूरा किया।

बालक चतुर्भुज दास जन्म से ही विलक्षण थे। भगवान की कृपा प्रसादी के रूप चतुर्भुज दास शैशव काल में भी बिना भगवान के दर्शन किए दुग्धपान भी नहीं करते थे। भजनानंदी पिता गोद में लेकर शिशु चतुर्भुज को श्रीनाथ जी का दर्शन करवाते। इस प्रकार प्रारम्भ से ही पिता–पुत्र का सत्संग एवं नित नवीन प्रभु चरित्र गुणगान का क्रम चल पड़ा। जन्म के 41वें दिन ही गुरू आज्ञा से

शिशु का ब्रह्म संबंध स्थापित करा दिया गया। कहा जाता है कि शिशु चतुर्भुज दास ने जीवन का प्रथम शब्द 'श्री कृष्ण शरणं मम्' बोला था। श्री चतुर्भुज दास भगवान के विशाल सखा के अवतार माने जाते हैं। इस अवतार का उद्देश्य भगवान की सख्य भाव से सेवा तथा कुंभनदास को भगवद चिंतन एवं सत्संग में सहयोग करना था। इस हेतु एकांत में शिशु वयस्क स्वरूप धारण कर अपने लौकिक पिता के साथ सत्संग किया करते थे तथा किसी अन्य की उपस्थिति होने पर अबोध बालक रहते थे। इस प्रकार से जन्य–जनक का सत्संग अनवरत चलने लगा। लगभग दो ढ़ाई वर्ष की अवस्था में चतुर्भुज दास जी ध्यान में बैठे थे तभी कुंभनदास जी बालक की ध्यान की मुद्रा देखकर बोले –

लाला! कहा करे हो भाई,
कौन सो जोग साध रहे हो

कहते हैं कि जवाब में चतुर्भुज दास जी ने एक पद गाया :–

गोपाल को मुखारविन्द
जिय में विचारो
कोटि भानु, कोटि चन्द्र, कोटि मदन बारो
गोपाल को मुखारविन्द जिय में विचारो ....

यह पद चतुर्भुज दास जी द्वारा गाया गया प्रथम पद माना जाता है। भगवान की कृपा से इन्हें भगवान की प्रकट–अप्रकट लीला का अनुभव होने लगा था। सख्य भाव की प्रेम सेवा में रति होने के कारण पिता–पुत्र सालोक्य एवं सामीप्य भाव के पद की रचना करते थे। चतुर्भुज दास जी भगवान की अलौकिकता का नित्य नवीन रूप में क्षण–प्रतिक्षण बदलते रहने वाली सौंदर्य माधुरी के वर्धमान स्वरूप का दर्शन करते थे। इस भाव की अभिव्यक्ति उनके पद "माई री आज और, कालु और छिन–छिन प्रति और और" में होती है। इनकी भक्ति संतत्व और पद रचना कुशलता को पुष्टिमार्गीय संतों ने स्वीकार कर मात्र 5 वर्ष की अवस्था में अष्टछाप में इन्हें स्थान प्रदान किया था। चतुर्भुज दास प्रभु के पद

केवल प्रभु के लिए और प्रभु के सम्मुख ही गाते थे। एक बार गुसांई विठ्ठलनाथ जी के पुत्रों के द्वारा पारासोली नामक स्थान पर रासलीला का आयोजन किया गया था। इस आयोजन में चतुर्भुज दास जी भी उपस्थित थे। सभी ने इनसे पद गायन का अनुरोध किया, किन्तु केवल श्रीनाथ जी के सम्मुख गाने के संकल्प के कारण इन्होंने गायन से मना कर दिया। परन्तु, गुरू पुत्रों एवं अन्य रसिकों के अत्यंत आग्रह करने एवं यह आश्वासन देने पर कि श्रीनाथ जी तो आपके सखा हैं, आप जहाँ गाओगे वे वहीं उपस्थित होकर सुनेंगे, के भरोसे पर चतुर्भुज दास जी ने गाना प्रारम्भ किया।

अद्भुत नट वेष धरें जमुना तट
स्याम सुन्दर गुणनिधन
गिरिवर धरन रास रंग नाचे ।

कलियुग के आरंभ में भगवान नारायण ने देवर्षि नारद के पूछने पर कहा कि हे प्रभु! कलियुग में प्राणी आपको कैसे सहज प्राप्त करे?

भगवान ने नारद जी के समक्ष अपने विरद की उद्घोषणा की थी :-

न अहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदयं न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तिष्ठामि तत्र नारद ।।

अर्थात्- न तो मैं बैकुण्ठ में निवास करता हूँ, न ही योगियों के हृदय में, मेरे भक्त जिस स्थान पर मेरा गायन करते हैं मैं वहीं निवास करता हूँ। तात्पर्य यह है कि कलियुग में भगवान के नामस्मरण तथा कीर्तन से ही प्रभु सहजता से प्राप्त हो जाते हैं।

कहते हैं कि उक्त उद्घोषणा को चरितार्थ करते हुए भगवान चतुर्भुज दास जी का गायन सुनने के लिए रास में उपस्थित हो गए। भगवत सामुख्य ही चतुर्भुज दास जी के जीवन का लक्ष्य था जिसके कारण कभी श्रीनाथ जी की सेवा से दूर नहीं जाना चाहते थे। गृहस्थी की जरूरतें एवं अत्यअल्प संसाधन के

कारण पूर्णतः अकिंचन थे। भगवद् समर्पण भाव के कारण आय के अतिरिक्त साधन का कोई प्रयोजन भी नहीं करते। लागो रे मन फकीरी में का भाव प्रबल था। इस बीच श्री चतुर्भुज दास जी के जीवन में अपने अष्टछाप के सखाओं के बारी–बारी से भगवद् धाम प्रस्थान करने के कारण विरह के भाव अंकुरित होने लगे। अर्धांगिनी के गोलोक गमन से उत्पन्न मरणशौच के कारण इनकी श्रीनाथ जी की दर्शन सेवा बाधित हो गई, जिसका विरह भाव पद रूप से "मोर भावं तो गिरिधर देख" "श्याम सुन्दर प्रान पियारे छिनु जिनि होहु निन्यारे" में परिलक्षित हो रहे थे।

कथा है कि इसी मनःस्थिति के समय गुरूदेव भगवान की आज्ञा से इन्हें ब्रज क्षेत्र से कतिपय कार्यवश बाहर जाने का आदेश प्राप्त हुआ। श्रीनाथ जी के दर्शन सेवा मात्र से वंचित होने पर विरह व्यथित मन इस आदेश के पालन की कल्पना मात्र से व्याकुल हो तड़पने लगा। किंतु गुरू आदेश मान कर श्री चतुर्भुज दास जी चल पड़े। एक–एक पग कड़ी परीक्षा के समान था। कहते हैं कि चलते–चलते जब वह सीमा आई जहाँ से गोवर्धन जी का शिखर ओझल हुआ तो हृदय की असीम विकलता के कारण अचानक विरह व्याकुल चतुर्भुज दास गोवर्धन जी की ओर दौड़ पड़े तथा मूर्छित हो गिर पड़े। कुछ काल उपरान्त भावावेश से बाहर होने पर भक्त शिरोमणि ने विरह का पद "गोवर्धनवासी सांवरे! तुम बिन रहयो न जाय" गाने लगे और इस पद के विरह–भाव उनकी नस–नाड़ियों में प्रवेश कर गया, साँसें उखड़ने लगी, प्राण थमने लगे। भक्ति की ऐसी अवस्था देख भक्तवत्सल नारायण स्वयं आकर अपने विशाल सखा के अवतार श्री चतुर्भुज दास जी को हृदय से लगा लिया और आश्वासन दिया कि जो भी कोई भक्त पूरी निष्ठा और श्रद्धा से एक वर्ष तक इस पद को गायेगा उसे किसी–न–किसी रूप में अवश्य ही मेरी अनुभूति होगी।

गोवर्धन वासी सांवरे, गोवर्धन वासी सांवरे,
तुम बिन रह्यो न जाय, गोवर्धन वासी सांवरे....
बंक चिते मुसकाय के, सुंदर बदन दिखाय,
लोचन तड़पे मीन ज्यों, जुग भर धारी बिहाय,

सप्तक स्वर बंधन सौं, मोहन वेणु बजाय,
सुरति सुहाई बांधिके, मधुर–मधुर गाय,
रसिक रसीली बोली, गिरि चढ़िगाय बुलाय,
गाय बुलाई दूधारी, ऊंची टेर सुनाय,
दृष्टि पड़ी जा दोष ते, तब ते रुचे न आए,
रजनी नींद न आवरी, एहि बिसरे भोजन पान,
दर्शन को नैना तपे, वचन सुनन को कान,
मिलिबे को हियरा तपे, हिय की जीवन प्राण,
मन अभिलाषा यह रहे, लगे न नैन निमेष,
इक टक देखें, नटवर नागर भेष,
पूरन शशि मुख देख के, चित्त चोटयो वही ओर,
रूप सुधा रसपान को, जैसे चन्द्र चकोर,
लोक लाज विधि वेद के, छाँड़े सबई विवेक,
कमल कली रवि ज्यों बढ़े, छिन–छिन प्रीति विशेष,
मन मथ कोटिक वारिने, देखी डगमग चाल,
युवती जनमन फन्दना, अम्बुज नयन विशाल,
कुंज भवन क्रीड़ा करो, सुख निधि मदन गोपाल,
हम वृंदावन मालती, तुम भोगी भ्रमर भूपाल,
यह रट लागी लाडिले, जैसे चातक मोर,
प्रेम नीर वर्षा करो, नव घन नन्द किशोर,
युग–युग अविचल राखिए, यह सुख शैल निवास,
श्री गोवर्धन रूप पे, बल जाय चतुर्भुज दास,
तुम बिन रह्यो न जाय, तुम बिन रह्यो न जाय,
गोवर्धन वासी सांवरे, गोवर्धन वासी सांवरे.....

"श्री कृष्ण शरणं मम्"

(श्री राकेश ठाकुर, राँची)

कबीर के दोहे

शब्द हमारा तू शब्द का, सुनि मति जाहु सरक।
जो चाहो निज तत्व को, तो शब्दहि लेहु परख।।

भावार्थ : सद्गुरू कबीर साहेब कहते हैं– हमारा 'सार शब्द' तुम्हारे निज घर सतलोक ओर निज स्वामी सत्यपुरुष का बोध कराने वाला है। तुम उसी सत्यपुरुष के दिव्य अंश हो तथा वहां से ही जगत में आए हो। अतः तुम मेरे सार शब्द के उपदेशों को सुनो। इससे भागो नहीं। संसार में नाना प्रकार की भ्रांतिपूर्ण वाणियां फैली हुई हैं। उनमें विश्वास करने पर भवसागर में भटकते रह जाओगे। यदि तुम निज घर और निज स्वामी सत्यपुरुष परमात्मा को पाना चाहते हो तो मेरे सार शब्द और संसार में फैली भ्रांतिपूर्ण वाणी की परीक्षा कर देख लो। तब सार शब्द को ग्रहण करना और असार वाणी को त्यागना। फिर तुम्हें निज घर और निज स्वामी पुनः प्राप्त होंगे।

शब्द हमारा आदि का, शब्दै पैठा जीव।
फूल रहन की टोकरी, घोरे खाया घीव।।

भावार्थ : हमारा सार शब्द आदिपुरुष परमात्मा से मिलाने वाला है। इस संसार में जीव कल्पित भ्रांतिपूर्ण वाणी में विश्वास कर आसक्त हो गया है। यह चेतन मानव शरीर तो सारवाणी को संग्रहित करने वाला तथा सद्गुणों को प्रकाशित करने का पात्र है जैसे सुगंधित फूलों को चुनकर आसक्ति से उनकी चेतना अचेत हो गई है जैसे छाछ में पड़े रहने से घी को छाछ नष्ट कर देती है।

शब्द बिना सुरति आंधरी, कहो कहां को जाय।
द्वार न पार्व शब्द का, फिर–फिर भटका खाय।।

भावार्थ : गुरूमुख वाणी सार शब्द नहीं पाने से भक्त की चेतना शक्ति विवेकहीन (अंधी) हो जाती है। उसे सद्भक्ति का सन्मार्ग नहीं दिखता। फिर कहो भला!

साधक भक्त की सुरति कहां और किसकी भक्ति में लगेगी? अर्थात् अन्यत्र भटकेगी। वह साधक निज स्वामी के निज घर का द्वार नहीं प्राप्त कर सकता है। फलस्वरूप जीव भवसागर के आवागमन में भटकता ठोकर खाता रहेगा।

शब्द-शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजे।
कहहिं कबीर जहां सार शब्द नहिं, धृग जीवन सो जीजे।।

भावार्थ : गुरूमुख वाणी सार शब्द और अन्य धार्मिक ग्रंथों की कल्पित वाणी में बहुत अंतर है। गुरूमुख वाणी मुक्तिदाता सत्यपुरुष का बोध कराती है और कल्पित वाणी कल्पित ब्रह्म निरंजन को मोक्षदाता मानती है। अतः हंस संतों को अपने विवेक की मथानी से मथकर सार शब्द का विवेचन कर लेना चाहिए। सद्गुरू कबीर साहेब कहते हैं कि - जिस मनुष्य में सार शब्द का ज्ञान विचार नहीं है उसका मानव जीवन व्यर्थ है और धिक्कारने योग्य है।

शब्दै मारा गिर परा, शब्दै छोड़ा राज।
जिन्ह-जिन्ह शब्द विवेकिया, तिनका सरिगौ काज।।

भावार्थ : कल्पित वाणी के भ्रमित सिद्धांत की आसक्ति से जगत के लोग सद्भक्ति के सन्मार्ग से पतित होकर भ्रांतिपूर्ण भक्ति में लग जाते हैं। फलतः उनका मुक्तिमार्ग छूट जाता है। कुछ लोग विराग वाणी के शब्दबाण से आहत होकर अपना राज कार्य त्याग विरक्त तपस्वी बन जाते हैं। विवेकवान शब्द भेद पर विचार करते हैं। जिन-जिन विवेकी चेतन हंस संतों ने सत्य मार्ग प्रदर्शित करने वाले सार शब्द को ग्रहण किया उनकी सद्भक्ति सफल हुई। उन्होंने मुक्ति पाई।

शब्द हमारा आदि का, पल-पल करहू याद।
अन्त फलेगी मांहली, ऊपर की सब बाद।।

भावार्थ : हमारा सार शब्द आदिपुरुष परमात्मा को परखने वाला है। सद्गुरू सत्संग में आकर इसे सुनो तथा इस पर चिंतन मनन करो। इसे पल-पल याद

करो। तब तुम पर सत्यपुरुष परमात्मा की दया होगी। अंत में तुम्हारे अंत:करण में उनका निवास होगा। फिर काल निकट नहीं आएगा जैसे मांहली फल की गंध से सर्प उनके निकट नहीं आता। इससे परे ऊपर की मायावी सारी वस्तुएं एवं प्राणी की आसक्ति व्यर्थ है। अन्य झीनी माया भी व्यर्थ है।

जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार।।

भावार्थ : हे चेतन मानव! तुम सद्‌गुरू सत्संग से अपनी जीवात्मा को जानो तथा परखो। तुम चेतन हंस जीव हो। तुम सद्‌गुरू की सद्‌भक्ति कर जीवन मुक्त बन जाओ। ऐसा जीवन-मुक्त हंस जीव शरीर त्यागने पर सत्यलोक का पाहुन बनता है। सत्यलोक गामी जीव दूसरी बार शरीर धारण नहीं करता है।

जो जानहु जग जीवना, जो जानहु सो जीव।
पानि पचावहु आपना, तो पानी मांगि न पीव।।

भावार्थ : जगत के जीव आवागमन में जीवन बिता रहे हैं। यदि उन्हें सत्संग द्वारा आवागमन और जीवन-मुक्ति की सही जानकारी हो जाए तो वे चेतकर अपने हंस स्वरूप को जाग्रत कर लेंगे। तब वे निज मुक्ति हेतु सद्‌गुरू की टकसार वाणी को ग्रहण कर सद्‌भक्ति में लग जाएंगे। फिर वे कल्पित भ्रमित वाणी रूपी पानी मांगकर नहीं पीएंगे, बल्कि उसे त्याग देंगे।

पानी पियावत क्या फिरो, घर-घर सायर बारि।
तृषावन्त जो होयेगा, पीवेगा झख मारि।।

भावार्थ : सद्‌गुरू की टकसार वाणी रूपी मीठा पानी जगत के जीवों को क्यों पिलाते फिरते हो? सब जीवों के घट-घट में तो भ्रमित कल्पित वाणी रूपी समुद्री खारा जल पीने का अभ्यास लगा है। उसे मीठा जल नहीं भाता। जो सार शब्द रूपी मीठे पानी का प्यासा हंस जीव होगा वह स्वयं हंस संतों की सत्संगति में आकर खरी परिक्षित वाणी को ग्रहण कर उसका अनुसरण करेगा।

हंसा मोति बिकानिया, कंचन थार भराय।
जो जाको मरम न जाने, सो ताको काह कराय।।

भावार्थ : हे सार–असार के विवेकी हंस जीव! सद्गुरू सत्संग रूपी हाट में अनुभव ज्ञान रूपी स्वर्ण थाल में भर–भरकर मुक्ति का सौदा आत्मज्ञान एवं सार शब्द रूपी मोती बिकते हैं। हंस संत खरीदकर उसका लाभ लेते हैं। जो सत्संग का महत्व नहीं जानते उन्हें क्या किया जाए? वे न सत्संग में जाएंगे और न मुक्ति का सौदा आत्मज्ञान रूपी मोती प्राप्त करेंगे।

एक बार की बात है। एक गाँव में प्रज्ञा प्रकाश नाम के एक विद्वान महोदय रहते थे। धन–धान्य से संपन्न तो थे ही लेकिन ज्ञान उनके पास इतना था कि दूर–दूर से लोग अपनी समस्याओं का समाधान करने उनके पास आते थे। अपने अनुभव और ज्ञान से प्रज्ञा प्रकाश लोगों की समस्याओं का समाधान करते थे। इसलिए सभी उनको गुरूजी कहकर संबोधित करते थे।

एक दिन की बात है। एक नवयुवक गुरूजी के पास आया और बोला – "गुरूजी मुझे सफलता का रहस्य बताइए, मैं चाहता हूँ कि मैं भी आपकी तरह विद्वान बनकर अपनी गरीबी दूर कर सकूँ।"

गुरूजी मुस्कुराए और उन्होंने उसे दूसरे दिन प्रातःकाल नदी किनारे मिलने के लिए बुलाया। युवक को भी नहाना था इसलिए वह भी अपने वस्त्र लेकर दूसरे दिन प्रातःकाल नदी किनारे पहुँच गया।

गुरूजी उस युवक को नदी के गहरे पानी में ले गये और जहाँ पानी गले के ऊपर निकल गया तो उन्होंने उसे डुबो दिया। थोड़ी देर युवक छटपटाया फिर उन्होंने उसे छोड़ दिया। युवक हांफता–हांफता नदी से बाहर भागा। जब उसे सुध आई तो बोला – "आप मुझे मारना क्यों चाहते हैं?"

गुरूजी बोले – "नहीं भाई, मैं तो तुम्हें सफलता का रहस्य बता रहा था। अच्छा बताओ? जब मैंने तुम्हारी गर्दन पानी में डुबो दी थी, उस समय तुम्हें सबसे ज्यादा इच्छा किस चीज की हो रही थी?"

युवक बोला – "साँस लेने की।"

गुरूजी बोले – "बस यही सफलता का रहस्य है। जब तुम्हें सफलता के लिए ऐसी ही उत्कंठ इच्छा होगी, तब तुम्हें सफलता मिल जाएगी। इसके अलावा और कोई रहस्य नहीं है।"

शिक्षा – दोस्तों! आप जीवन में किसी भी चीज को पाना चाहते हो, तो उसे आपका बेइंतहा चाहना जरुरी है। मतलब हर समय आपको उसे पाने के बारे में सोचना चाहिए। अगर ऐसा नहीं है तो शायद आप उसे देर से पाओ या शायद ना भी पाओ।

रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद

रजिस्टर्ड ऑफिस: एस ई 297, शास्त्री नगर, हापुड़ रोड, ग़ाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

उमाकान्त प्रसाद
आचार्य एवं अध्यक्ष

207, संयम प्रतीक अपार्टमेंट
खाजपुरा, पटना–800014

घोषणा: संस्था की कार्यकारणी समिति 2025–2026

मैं, उमा कान्त प्रसाद पुत्र स्व. श्री चंद्रिका प्रसाद, आचार्य एवं अध्यक्ष रामाश्रम सत्संग (रजि.) गाजियाबाद (उ.प्र.) संस्था की वर्तमान कार्यकारणी समिति भंग करता हूँ। वर्ष 2025–2026 के लिए संस्था के विधान की धारा 10(ग) में प्रदत अधिकारों के तहत नवीन कार्यकारणी समिति का गठन करता हूँ तथा नवीन कार्यकारणी समिति में निम्न पदाधिकारिओं एवं सदस्यों की नियुक्ति की घोषणा करता हूँ तथा नयी सूची जारी करता हूँ, जो विधान की धारा के अनुसार एक वर्ष की अवधि हेतु वैद्य एवं प्रभावी होगी :–

क्र.	पद	नाम	पता	व्यवसाय
1.	अध्यक्ष	उमा कान्त प्रसाद पुत्र श्री चंद्रिका प्रसाद	207, संयम प्रतीक अपार्टमेंट, खाजपुरा, पटना – 800014	सेवानिवृत्त
2.	उपाध्यक्ष	कैप्टन के.सी. खन्ना पुत्र श्री एल.आर. खन्ना	आर –11/182, न्यू राजनगर, ग़ाजियाबाद	सेवानिवृत्त
3.	मंत्री	श्री अनुराग चन्द्र प्रसाद पुत्र श्री हरीश चन्द्र प्रसाद	बी1–206, अरावली, सैक्टर 34, नोयडा	सर्विस
4.	कोषाध्यक्ष	श्री राकेश वर्मा पुत्र श्री विनायक प्रसाद वर्मा	ए 4– 1403 इरोस सम्पूर्णम, सेक्टर–2, ग्रेटर नोएडा वेस्ट गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश	सेवानिवृत्त
5.	संयुक्त–मंत्री	श्री राकेश कुमार पुत्र श्री शारदा नंद लाल	नन्द भवन, गाँधी पथ, गौड़िया मठ जक्कनपुर, पटना	सर्विस
6.	सदस्य	श्री. प्रियाशरण पुत्र श्री गणेश प्रसाद श्रीवास्तव	105 – हिमालय टॉवर, अहिंसा रवण्ड–2, इन्द्रापुरम, ग़ाजियाबाद	सेवानिवृत्त

क्र.	पद	नाम	पता	व्यवसाय
7.	सदस्य	श्री रमेश चंद्र प्रसाद सिन्हा पुत्र श्री देव नंदन प्रसाद	एम ए-39 आदित्यपुर हाउसिंग कॉलोनी, जमशेदपुर, बिहार	सेवानिवृत्त
8.	सदस्य	श्री आर.पी. शिरोमणी पुत्र श्री मूलचन्द वैद्य	मूलचन्द मार्किट, शमशाबाद रोड, आगरा	सेवानिवृत्त
9.	सदस्य	प्रो. राजेश के. सक्सेना पुत्र श्री जंग बहादुर सक्सेना	1501, टी 2, हारमनी अपार्टमेंट, सेक्टर 50, गुरुग्राम, हरियाणा	सेवानिवृत्त
10.	सदस्य	श्री अजय बहादुर सिंह पुत्र गोपाल प्रसाद सिंह	प्लाट नम्बर-854, फ्लैट नम्बर-401/402, सुरेन्द्र अपार्टमेंट, मधुसूदन नगर, भुवनेश्वर, ओड़िशा	शिक्षा संस्थान
11.	सदस्य	श्री आशुतोष झा पुत्र श्री महाकान्त झा	402/सी, श्री गणेश अपार्टमेंट, अशोक विहार, रांची स्ट्रीट	शिक्षा संस्थान
12.	सदस्य	श्री ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव पुत्र श्री उमा कान्त प्रसाद	ई-19, स्ट्रीट एफ1, पांडव नगर (मयूर विहार फेज-1 साइड), दिल्ली-110091	लीगल फर्म
13.	सदस्य	श्री राकेश कुमार पुत्र श्री रबिन्द्र ठाकुर	फ्लैट नम्बर-4ए, कैलाश अपार्टमेंट, साउथ ऑफिस पारा डोरंडा, रांची- 834002, झारखण्ड	सर्विस
14.	सदस्य	श्री संजीव कुमार सिन्हा पुत्र श्री हरे कृष्ण बरियार	हाउस नंबर-16 चेतना समिति ए जी कलोनी के समीप, पटना	सर्विस
15.	सदस्य	श्री रंजीव कुमार (अतुल) पुत्र श्री उदय कुमार सिन्हा	2/267, विक्रम खंड-२, गोमती नगर, लखनऊ-226010	सर्विस

उमाकान्त प्रसाद
अध्यक्ष एवं आचार्य
रामाश्रम सत्संग (रजिस्टर्ड) ग़ाजियाबाद

दिनांक 21-09-2025

Playing worldly game under the Divine Captain

THE IDEAL OF HUMAN CONDUCT IN THE GEETA

In his brief but beautiful and sublime discourse given on the battle-field of Kurukshetra to Arjuna, the most illustrious hero of his age, just before the commencement of the most horrible war of Mahabharata, Shri Krishna in his characteristic Divine mood presented to the human race a philosophy of human conduct, which was perfectly in tune with the philosophy of the Divine Leela as illustrated in his own life.

The discourse has been appropriately described by the greatest thought-leaders of Bharatavarsha as the Divine song, Shrimad Bhagavad Geeta. It is really an unparalleled philosophical song. It is also spoken of as Upanishad, Yog-Shastra, Bramha-Vidya — all these at the same time. It reveals the innermost secret of the Divine Heart; it teaches the most practical method for bringing about perfect union (Yoga) among all the apparently diverse aspects of the complex human nature as well as union of the human life with the Life Divine; it offers the loftiest philosophical conception of the Absolute Reality (Brahma) and at the same time brings God and man so close to each other that the difference between them almost vanishes.

In it the Divine Artist appears to sing out His innermost heart to representative man (Nara-Avatara), whom He accepts as His fast friend and playmate, unveils the secrets about his inscrutable character to him, and teaches him the easiest way to elevate himself to His plane of existence — the plane of perfect joy and perfect sportsmanship. Shrimad Bhagavad Geeta is a finely musical as well as deeply metaphysical exposition by Bhagwan Shri Krishna himself of the spiritual significance of His own life-story, of God playfully humanizing Himself and teaching man the art of divinising himself.

SPORTIVE SPIRIT IN PRACTICAL LIFE

The ideal of conduct which the Divine Player puts before man in the Geeta may at the outset be summarised thus:

"Cultivate the spirit of heroic and sweet sportsmanship in all your activities and in all the aspects of your life in this Divine world. Freely and modestly, calmly and fearlessly, joyfully and intelligently, participate in the mundane play of the Supreme Spirit, and with unfailing vigour and enthusiasm apply yourself to the execution of whatever duties He may allot to you in His playground.

Like a true sportsman, think not of profit and loss, victory and defeat, success and unsuccess, think not of the fruits of your actions, but think only of the duties divinely allotted to you and perform them in a way worthy of a chosen playmate of the Divine Player.

Don't weaken your mind and heart by entertaining thoughts and anxieties about the possible outer consequences of the actions which you find after due consideration to be your noble duty to perform; leave the consequences to the sweet and all-governing will of the Divine Captain of all worldly games; He will look after and regulate them in accordance with the scheme of His play.

You are only to assure yourself that some course of action has been allotted to you as your part of play in His play-field, and you should sincerely and earnestly apply your energy and intelligence to it out of love for the devotion to that Supreme Master of this cosmic play.

All work should be known and felt as His work, and all work should be delightfully performed for His sake, in a spirit of loving and faithful service to Him.

Pure, whole-hearted dynamic love for the supreme Player Artist who has been eternally manifesting in the most artistic and

sportive manner the infinite joy and glories of His transcendental nature in this ever-old and ever-new cosmic system, should be the governing principle of all human conduct.

It is this love for the Absolute, which should elevate human conduct from the plane of desire ridden wordly action to a higher plane of desireless joyful sport, from the plane of Karma to the plane of Leela, from the plane of matter to the plane of spirit.

The inner consequence of this cultivation of love for the Absolute Spirit, cultivation of the habit of performing duties in a sportsmanlike manner as a form of loving worship to the Divine Player, cultivation of the disposition of doing God's work in God's world for God's sake, is the progressive elevation of human nature to higher spiritual planes, the progressive union between the human character and the Divine character, leading ultimately to the realisation of Divinity in Humanity.

(Extracts from "Discourses on Hindu Spiritual Culture" by His Holiness Shri A.K. Banerjee published by S. Chand & Co.)

भजन मंजूषा

तू दयालु दीन हौं तू दानी हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप–पुंज हारी!

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो ?
मो समान आरत नहीं , आरत हर तो सौं!

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो,
तात, मात, गुरु, सखा, तू सब विधि हितु मेरो!

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै,
ज्यों त्यों 'तुलसी' कृपालु चरन सरन पावै!

ईश्वर प्राप्ति का यकीनी जरिया

1. जिक्र खफ़ी का जाप (दिल का जाप) किया करें।
2. नाजिन्स, गैर-आदमी और गैर-सोहबत के नक्शों से दिल को साफ रखें।
3. परमात्मा के सिवाय किसी की तरफ तवज्ज़ो न करें।
4. यकसुई और एकाग्रता के साथ दिल हाजिर रखने का इरादा करें।
5. सत और मालिक की तरफ उनसियत और लगाव हासिल करें।
6. अपने आप को मिटाकर उसी में महव और लय हो जाएं।
7. इसी काम में अपने को मिला दें। सबसे ज्यादा नजदीक रास्ता और असल पद पर पहुँचने का यकीनी जरिया है।

-(महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

Easiest & Most Certain Short-cut to Attain Eternal Bliss

1. Engage yourself in the practice of listening to every heartbeat, super imposing there with the nomenclature of the Lord (AJAPA JAP).
2. Keep your heart pure, away from the corrupting influence of undesirable things and undesirable company.
3. Always keep attuned to the Lord. Your attention should never for a moment be deviating there from.
4. Concentrate your attention on the heart and keep your heart centred in the Lord.
5. Endeavour to attain kinship and attachment to the Eternal truth, the Lord of the Universe.
6. Gradually erase the identity of self, try to merge in and attain oneness with God.
7. Sacrifice life in this grand endeavour.

(Mahatma Ramchandra Ji Maharaj)

Note: The English translation is done by Dr H.N. Saksena

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम संदेश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम संदेश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। चन्दा 20 रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, एस ई 297–शास्त्री नगर, ग़ाज़ियाबाद–201002 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम संदेश डाक द्वारा नहीं भेजा जायेगा। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जायेगा। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

एस ई 297–शास्त्री नगर,
ग़ाज़ियाबाद–201002

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : श्री उमा कान्त प्रसाद

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301